डिस्टैंस ऐजुकेशन विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : बी.ए. भाग-3 (हिन्दी) *सैमेस्टर-6*

पत्र : हिन्दी साहित्य *एकांश संख्या : 2*

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

2.1 : जयशंकर प्रसाद : नाटककार के रूप में

2.2 : ध्रुवस्वामिनी नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.3 : ध्रुवस्वामिनी की तात्विक समीक्षा

2.4 : ध्रुवस्वामिनी का चरित्र चित्रण, समस्याएं

2.5 : सप्रसंग व्याख्या

2.6 (A) : आधुनिक काल का सामान्य परिचय

2.6(B) : जीवनी और संस्मरण का विकास

2.7(A) : आलोचना और रेखाचित्र का विकास

2.7(B) : आत्मकथा का विकास

2.8 : निबन्ध की परिभाषा एवं तत्व

2.9(A) : जीवनी परिभाषा एवं तत्व

2.9(B) : संस्मरण : परिभाषा एवं तत्व

2.9(C) : रेखाचित्र की परिभाषा एवं तत्व

Department website : www.pbidde.org

पाठ संख्या - 2.1 **लेखक : श्री राजिन्द्र कुमार**

जयशंकर प्रसाद : नाटककार के रूप में

इकाई की रूपरेखा :

2.1.0 उद्देश्य
2.1.1 प्रस्तावना
2.1.2 जयशंकर प्रसाद : नाटककार के रूप में
2.1.3 प्रसाद के नाटकों की विशेषताएं
2.1.3.1 कथावस्तु
2.1.3.2 नाट्य शिल्प
2.1.3.3 अभिनय
2.1.3.4 ऐतिहासिकता
2.1.4 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का परिचय
2.1.5 सारांश
2.1.6 शब्दावली
2.1.7 बोध प्रश्न

2.1.0 उद्देश्य :

साहित्य के क्षेत्र में प्रसाद जी की बहुमुखी देन है। वे उच्चकोटि के कवि, कथाकार, निबन्धकार और नाटककार थे। जिस समय हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में प्रसाद जी अवतरित हुए उस समय हिन्दी नाटकों का कोई स्थिर आदर्श नहीं था। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पूर्व कुछ नाटक लिखे गए लेकिन हिन्दी नाटकों का वास्तविक रूप भारतेन्दु युग में ही सामने आता है। स्वयं भारतेन्दु ने अनेक नाटकों में अनुवाद किए और कुछ मौलिक नाटक भी लिखे। उनके समय में कुछ और भी नाटक लिखे गए। इस युग में नाटकों में तत्काली सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का अच्छा चित्रण हुआ है लेकिन जहाँ तक नाट्य–शिल्प का सम्बन्ध है, इनमें प्रायः संस्कृत की प्राचीन परम्परा का ही अनुकरण किया गया था। उस युग में परसी मण्डलियों द्वारा मनोरंजन के लिए जो हल्के नाटक खेले जा रहे थे उनका भी प्रभाव इस युग के नाटकों पर पड़ा। प्रसाद जी के आगमन से हिन्दी के नाटक साहित्य में नवजीवन का उदय हुआ। उन्होंने अपने नाटकों में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना को मुखरित किया और भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्य–शैलियों के समन्वय से उच्च कोटि के नाटकों का सृजन किया। कुल मिलाकर प्रसाद जी ने चौदह नाटक लिखे जिनमें से राज्यश्री, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी प्रमुख है। इनमें भी 'एक घूंट' एकांकी है, 'कामना' प्रतीक नाटक है, 'करूणालय' गीति नाट्य है। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि,

* प्रसाद एक उच्चकोटि के कवि तथा कथाकार ही नहीं एक कुशल नाटककार भी हैं,
* प्रसाद ने महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है,
* प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का गुणगान किया है।

2.1.1 प्रस्तावना :

जिस समय प्रसाद जी ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया, देश में सांस्कृतिक और राजनीतिक जागरण का बिगुल बज रहा था। स्वातन्त्र्य भावना के साथ–साथ सांस्कृतिक पुनरूत्थान की भावना से भी जन–मन आन्दोलित था। इसीलिए प्रसाद जी के नाटकों में सांस्कृतिक और राष्ट्र–सम्बन्धी भावनाओं का पुट होना स्वाभाविक था। भारतीय संस्कृति में प्रसाद जी की दृढ़ आस्था थी और वे उसका पुनरुत्थान करना चाहते थे। पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता से मोहित नवयुवकों में वे फिर से भारतीय संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा करना चाहते थे और साथ ही उनमें देश–प्रेम की भावना भी जगाना चाहते थे। यही कारण है कि उनके प्रायः सभी नाटक इन भावनाओं से अनुप्राणित हैं। 'कामना' नाटक में स्पष्ट रूप से उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की विजय घोषित की है। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' और 'अजातशत्रु' आदि नाटकों में भी उन्होंने भारतीय संस्कृति के गौरवमय रूप को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है, उनके अधिकतर नाटकों की कथावस्तु ऐतिहासिक है। इतिहास भी अत्यन्त प्राचीन काल का लिया गया है। विशेष रूप से उस समय का, जब भारतीय संस्कृति का किसी विदेशी संस्कृति के साथ संघर्ष हुआ है और प्रसाद जी ने उस संघर्ष में से भारतीय संसकृति के उज्जवल रूप को चमकते हुए दिखाया है। इस तरह हम देखते हैं कि यद्यपि उनके नाटक ऐतिहासिक आधार को लेकर लिखे गए हैं तथापि उनमें विशेषता यह है कि उनमें आधुनिक युग की समस्याओं को उभारा गया है, वे नई चेतना और प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। इसीलिए बहुधा यह कहा गया है कि प्रसाद जी के नाटक अतीत के पट पर वर्तमान के चित्र हैं। प्रसाद जी का विश्वास था कि किसी भी जाति का प्राचीन इतिहास और उसकी गौरवपूर्ण परम्पराएं उसके वर्तमान के आदर्शों को संगठित करने में सहायक हो सकते हैं। कहना न होगा कि इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है।

2.1.2 जयशंकर प्रसाद : नाटककार के रूप में :

प्रसाद जी ने प्राचीन कथानकों के माध्यम से वर्तमान को नई दिशा देने का प्रयास किया है, लेकिन इसका यह अभिप्रायः कदापि नहीं कि आधुनिक युग की समस्याओं के चित्रण के मोह में उन्होंने ऐतिहासिकता की उपेक्षा की है। वरन् अपने नाटकों की कथावस्तु की ऐतिहासिकता का निर्वाह करने की भी उन्होंने पूरी चेष्टा की हैं। उन्होंने अपने नाटकों की कथावस्तु का आधार उस युग के इतिहास को बनाया है जो बहुत धुन्धला, अनिश्चित और बिखरा हुआ है। प्रसाद जी ने प्राचीन साहित्य और पुरातत्व का भी गम्भीर अध्ययन किया था और उसका आधार लेकर उन्होंने अपने नाटकों की कथावस्तु को एक निश्चित ऐतिहासिक रूप दिया है। बहुत से तथ्य जो उनके नाटकों में ऐसे भी आये हैं जो इतिहासकारों के लिए भी उपयोगी रहे हैं। चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु ध्रुवस्वामिनी इत्यादि उनके ऐतिहासिक नाटकों के प्रमुख पात्र और घटनाएं ही ऐतिहासिक नहीं है, लेखक ने उस युग के वातावरण को भी यथार्थ और सजीव रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यह दूसरी बात है कि नाटकीय रस–योजना, उद्देश्य और अन्य नाटकीय आवश्यकताओं के कारण उन्होंने कल्पना से भी पर्याप्त काम लिया है। वस्तुतः उनके नाटकों में कल्पना और इतिहास का सुन्दर समन्वय हुआ है।

2.1.3 प्रसाद के नाटकों की विशेषताएं :

प्रसाद ने पाश्चात्य और भारतीय नाट्य शैलियों के समन्वय का प्रयत्न किया है, भारतीय नाट्य शास्त्र में प्रतिपादित नाटक के प्रमुख तत्त्व वस्तु, नेता और रस का निर्वाह भी बहुत कुछ उसी तरह हुआ है और पाश्चात्य नाटकों में पाये जाने वाले प्रमुख तत्व 'संघर्ष' अथवा 'अन्तर्द्वन्द्व' का निरुपण भी उन्होंने विद्यवता से किया है।

2.1.3.1 कथावस्तु :

उनके आरम्भिक नाटकों में संस्कृत नाट्य परम्परा की ओर झुकाव अधिक है और इसीलिए उसमें कथावस्तु और नायक सम्बन्धी प्रायः सभी प्राचीन आदर्श किसी न किसी रूप में मिल जाते हैं। यहाँ तक कि उनमें स्वगत कथनों की भरमार है जिससे कुछ अस्वाभाविकता भी आ गयी है। लेकिन धीरे–धीरे उनकी नाट्य कला में परिष्कार होता गया और उनमें से अस्वाभाविकता कम होती गई और वे यर्थाथता के अधिक निकट आते गये। उनके परवर्ती नाटकों में भरत वाक्य है, न नन्दी पाठ। स्वगत कथन भी बहुत कम रह गये हैं। मरण, युद्ध आदि ऐसी घटनाएं जिनका भारतीय नाटकों में मंच पर दिखाए जाने का निषेध था वे भी उनके नाटकों में खूब आई हैं। कथावस्तु भी घात–प्रतिघात से आगे बढ़ती रही हैं और पात्रों के चरित्र भी बाह्य और आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व से परिचालित हैं। उनके पात्र प्राचीन संस्कृत नाटकों की तरह बंधी–बंधाई श्रेणी के नहीं है। वे मानवीय गुणों से युक्त और सप्राण हैं। प्रसाद जी पहले कवि थे और बाद में नाटककार। यही कारण है कि उनके नाटकों में गीतों की भरमार है। अधिकतर पात्र यत्र–तत्र गाते पाये जाते हैं। ऐसे गाने भी जिनका प्रसंग के साथ कोई मेल नहीं है, उनमें कवि कल्पना और अनुभूति ही मुखरित हो रही है। गीतों में छायावाद युग का पूरा प्रभाव है और इसीलिए वे जन साधारण की समझ से दूर हैं। उनकी भाषा शैली कहीं–कहीं क्लिष्ट है तथा प्रायः रस सृष्टि में बाधक बन गई है। उसके आरम्भिक नाटकों में गीतों की संख्या तेरह चौदह रही है, सौभाग्य से बाद के नाटकों में यह संख्या कम हो गई है और ध्रुवस्वामिनी में केवल चार ही गीत आए हैं।

2.1.3.2 नाट्यशिल्प :

प्रसाद जी छायावाद युग के श्रेष्ठ कवि थे, इसलिए गद्य की भाषा में भी कोमलता, काव्यत्व एवं लाक्षणिकता अधिक है। कई स्थानों पर कथोपकथनों में अथवा स्वगत कथनों में भाषा इतनी अलंकृत हो जाती है कि सामाजिकों में से कुछ पढ़े–लिखे लोग ही उसे शायद समझ सकें। जबकि नाटक के लिए तो ऐसी भाषा ही उपयुक्त होती है जो सहज और सरल हो तथा जिसे जनसाधारण समझ सके।

2.1.3.3 अभिनय :

अभिनय एक ऐसा तत्व है, जो नाटक को साहित्य की अन्य विधाओं से अलग करता है। खेद है कि अभिनय की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटक दोष रहित नहीं है। कई ऐसे कारण है, जिनसे उनके सभी नाटकों का सफल अभिनय होना कठिन है, उनका दो तीन घण्टे में अभिनय ही नहीं हो सकता और अधिक देर आज के युग में शायद ही कोई बैठना पसन्द करें। चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त ऐसे ही नाटक हैं।

दूसरे, उनके नाटकों में अनेक दृश्य ऐसे हैं जिसको रंगमंच पर प्रस्तुत करना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। नाटकों का दृश्य–विधान भी ऐसा दोषपूर्ण है कि मंच पर उन दृष्यों का विधान आसानी से नहीं किया जा सकता। उनके लम्बे गीत और अस्वाभाविक स्वगत कथन भी अभिनय में बाधा उपस्थित करते हैं। लेकिन यह सब होते हुए भी प्रसाद जी अपने युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उन्होंने हिन्दी नाटक को एक निश्चित दिशा प्रदान की। आज भी हिन्दी में शायद ही उनके स्तर का नाटककार होगा।

2.1.3.4 ऐतिहासिकता :

ध्रुवस्वामिनी प्रसाद जी का अन्तिम ऐतिहासिक नाटक है। कथावस्तु, उद्देश्य और शिल्प की दृष्टि से यह उनके पहले–नाटकों से काफी भिन्न है। सबसे पहली बात तो यह है कि आकार में यह नाटक उनके अन्य नाटकों की अपेक्षा बहुत छोटा है और इसका बहुत थोड़े समय में कुशलतापूर्वक अभिनय किया जा सकता है। दूसरे प्रसाद जी अपने नाटकों में भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्वों की प्रतिष्ठा किया करते थे लेकिन यहाँ उन्होंने अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देते हुए नारी के पुनर्विवाह का समर्थन किया है।

नाटक का कथानक गुप्तवंश के दुर्बल, सम्राट रामगुप्त के शासन काल की एक घटना का वर्णन हुआ है। समुद्रगुप्त के पश्चात् रामगुप्त गद्दी पर बैठता है। वह बड़ा ही क्रूर, विलासी, अयोग्य, कायर तथा क्लीव पुरुष है। वह चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता ध्रुवस्वामिनी से बलपूर्वक विवाह कर लेता है और शासन भी स्वयं करने लगता है। जब शकराज उस पर आक्रमण करता है और सन्धि की शर्तों में ध्रुवस्वामिनी की मांग करता है तो वह उसे देने को तैयार हो जाता है। उससे खिन्न होकर ध्रुवस्वामिनी आत्महत्या करने को उद्यत हो जाती है, लेकिन चन्द्रगुपत उसे ऐसा करने से रोक लेता है और स्वयं ध्रुवस्वामिनी के वेश में शक–शिविर में जाकर शकराज की हत्या कर देता है और ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर लेता है।

2.1.4 ध्रुवस्वामिनी :

जहां तक इस नाटक की ऐतिहासिकता का प्रश्न है, कुछ लोगों ने रामगुप्त के शासनकाल एवं ध्रुवस्वामिनी की चन्द्रगुप्त से पुनर्विवाह आदि से सम्बन्धित घटनाओं को अनैतिहासिक बताया था। लेकिन अत्यधिक खोजों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि इस नाटक के सभी प्रमुख पात्र शकराज, रामगुप्त, मिहिरदेव, चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी ऐतिहासिक पात्र हैं और 'देवी चन्द्रगुप्त' श्रृंगार प्रकाश नाट्य दर्पण, हर्ष चरित्र और 'आयुवैदीपिका' आदि प्राचीन ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है। ध्रुवस्वामिनी के नाम के सम्बन्ध में कुछ मतभेद अवश्य हैं। विशाख के 'देवी चन्द्रगुप्त' में ध्रुवदेवी और राजशेखर के 'काव्य मीमांसा' में 'ध्रुवस्वामिनी' के नाम आये हैं। प्रसाद जी ने दोनों नामों को स्वीकार किया है। शिखर स्वामी, मन्दाकिनी, पुरोहित और कोमा काल्पनिक पात्र हैं। नाटक की प्रमुख घटनाएं भी ऐतिहासिक हैं। कुछ लोगों ने शकराज द्वारा ध्रुवस्वामिनी के प्रस्ताव को अस्वाभाविक तथा असंगत बताया है। इसी तरह चन्द्रगुप्त का ध्रुवस्वामिनी को शकराज के शिविर में साथ ले जाना भी उन्हें प्रतीत नहीं होता। चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में भी कुछ आपत्तियां उठाई जाती रही हैं लेकिन इस सम्बन्ध में जो तथ्य प्राचीन ग्रन्थों के सामने आए हैं, उनसे नाटक की ऐतिहासिकता के सन्दर्भ में सभी शंकाओं का निवारण हो गया है। रामगुप्त का शकराज को ध्रुवस्वामिनी को सौंपने के लिए तैयार होना, चन्द्रगुप्त का स्त्री वेश में शकशिविर में जाकर शकराज की हत्या के बाद ध्रुवस्वामिनी के सतीत्व की रक्षा करना तथा विवाह आदि सभी घटनाएं ऐतिहासिक हैं।

बिखरी हुई घटनाओं को एकरूपता देने के लिए और नाटकीय प्रभाव को गहरा बनाने के लिए कुछ कल्पना से भी काम लिया गया है, लेकिन उनकी कल्पना इतिहास से बहुत दूर नहीं गई। प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी को चन्द्रगुप्त के साथ शक शिविर में भेजा है जो उसके प्रेम को गहरा रूप देने के लिए ही किया गया लगता है। कोमा तथा शकराज के प्रेम का प्रसंग भी नाटक में नाटकीयता और सरलता लाने के लिए जोड़ा गया है। इस तरह प्रसाद जी ने कल्पना और इतिहास के सुन्दर समन्वय द्वारा इस नाटक की सृष्टि की है नाटक की एक विशेषता यह भी है कि लेखक ने उस युग के वातावरण को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। तत्कालीन समाज के राजनैतिक षड्यन्त्र, विलासिता, मद्यपान, पराजित राजा से संधि में स्त्री की मांग करना, हिजड़ों और भौंडें पुरुषों से राज्य का भरा रहना, नर्तकियों का आयोजन, समाज में पुरोहितों की प्रतिष्ठा, मंगल और अमंगल में आस्था और नारी की स्थिति का जैसा चित्रण इस नाटक में हुआ है, वह सर्वस्व उस युग के अनुरूप है।

इस नाटक में केवल तीन अंक हैं। सारे कथानक का संगठन बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से हुआ है। कथानक में प्रवाह भी है और गति भी। कहीं भी उसमें जटिलता, बिखराव अथवा शिथिलता नहीं है। कोमा और शकराज की कथा भी बड़े सुन्दर ढंग से मुख्य कथानक से जुड़ी है। कथानक स्वाभाविकता से चरम–सीमा

की ओर बढ़ता हुआ पाठक पर अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। अंक विभाजन, नाट्य–कला की दृष्टि से उचित बन पड़ा है। इसी तरह पात्रों का चरित्र–चित्रण भी बड़ा सजीव और स्वाभाविक है। घटनाओं से पात्रों का चरित्र निखर आता है। जैसे, तिरस्कृत होकर ध्रुवस्वामिनी का आत्म–सम्मान और विद्रोही रूप जागता है। सभी पात्र अपने–अपने चरित्र की विशेषताएं लिए हुए हैं और उनका अपना व्यक्तित्व है। रामगुप्त विलासी, कायर और क्लीव है, तो चन्द्रगुप्त में वीरता, कर्त्तव्य निष्ठा और त्याग की भावना विकसित होती दिखाई देती है। कोमा सरल और भावुक प्रेममयी नारी है, जो ध्रुवस्वामिनी में स्वाभिमानी, प्रगतिशील, प्रचण्ड और साहसी नारी के दर्शन किए जा सकते हैं। प्रसाद जी ने अपने पात्रों का चरित्र–चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है और उनके अर्न्तद्वन्द्व को भी झलकाया है।

इस नाटक के कथोपकथन भी प्रसाद जी के अन्य नाटकों की अपेक्षा सरल, स्वाभाविक और यथार्थ हैं। उनसे पात्रों का चरित्र भी उद्घाटित होता है और कथानक भी आगे बढ़ता है। यहां संवाद संक्षिप्त भी हैं और प्रभावपूर्ण भी। वे कथानक में बाधक नहीं होते और न ही अभिनय में कुछ रुकावट डालते हैं। वैसे स्वगत कथन भी इसमें नहीं हैं, जैसे प्रसाद जी के पहले नाटकों में मिलते हैं।

अभिनय की दृष्टि से भी यह सफल नाटक हैं। प्रसाद जी के अन्य नाटक अभिनय की दृष्टि से शिथिल थे, लेकिन ध्रुवस्वामिनी में घटनाएं, कार्य–व्यापार और दृश्य–विधान ऐसे ढंग से प्रस्तुत हुए हैं कि रंगमंच पर उसकी व्यवस्था करने में कोई कठिनाई नहीं होती। कथावस्तु की तीव्रगति, पात्रों की सक्रियता एवं प्रवाहपूर्ण संक्षिप्त संवाद इनकी नाटकीयता में वृद्धि करते हैं। इस नाटक में कहीं भी अस्वाभाविकता के दर्शन नहीं होते। स्वाभाविकता और यथार्थकता का सर्वत्र निर्वाह किया गया है। गीतों के प्रति भी जैसा मोह प्रसाद जी को पहले था, वैसा अब नहीं रहा है। इसमें केवल चार गीत आए हैं और वे सभी परिस्थितियों के अनुकूल हैं। वे अधिक लम्बे भी नहीं हैं। उनमें हृदय की भावनाओं की सुन्दर अभिव्यंजना है। इस नाटक की भाषा यद्यपि परिष्कृत और परिभार्जित है लेकिन वह किलष्ट न होकर कवित्व पूर्ण और सशक्त है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वस्तु–विन्यास, चरित्र–चित्रण, अभिनेयता, भाषा–शैली, वातावरण आदि प्रत्येक तत्व की दृष्टि से ध्रुवस्वामिनी एक श्रेष्ठ नाटक है। प्रसाद जी का नाट्य शैली के प्रति जैसा मोह पहले पाठकों में दिखाई पड़ता है वह अब नहीं रह गया है और यही कारण है कि इस नाटक में स्वाभाविकता और यर्थाथकता अधिक है। यहाँ उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य नाट्य शैलियों को नवीनता के साथ ग्रहण किया है और तकनीकी दृष्टि से बहुत आगे बढ़ आए हैं।

इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह समस्या नाटक के रूप में हमारे सामने आता है। यह भी कहा जा सकता है कि यह हिन्दी का सबसे पहला समस्या नाटक है। इसकी मूल समस्या है – नारी समस्या। इसमें विवाह पद्धति, पति–पत्नी के सम्बन्ध, नारी शोषण एवं नारी के अधिकारों की मांग को बलपूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

एक युग था, जब हमारे देश में नारी का बड़ा सम्मान था। लेकिन इस युग में आकर नारी की स्थिति बहुत दयनीय हो गई और उसे पुरुष की दासी समझा जाने लगा। यह उनके विलास की वस्तु बन गई और पुरुष उस पर मनमाने अत्याचार करने लगा। जैसे यह पुरुष की अपनी सम्पत्ति है। जिसका उपयोग पुरुष उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। नारी का न अपना व्यक्तित्व है और न स्वाभिमान। आधुनिक युग में आकर समाज में एक नई चेतना ने करवट ली और नारी के अधिकारों की मांग जोर पकड़ने लगी। प्रसाद जी को भी इस चुनौती का सामना करना पड़ा। प्रसाद जी के हृदय में नारी के प्रति अगाध श्रद्धा थी। वे उसे कल्याणमयी, जगत्तारिणी, मंगलमयी देवी के रूप में देखते थे। उन्हें नारी का शोषण असहाय था, इसीलिए ध्रुवस्वामिनी की

प्रमुख समस्या नारी के अधिकारों की समस्या है। हम देखते हैं कि ध्रुवस्वामिनी विजय उपहार के रूप में गुप्त काल में आई थी। वह चन्द्रगुप्त की वीरदत्ता थी लेकिन उसकी इच्छा के विरुद्ध रामगुप्त उससे राक्षस विवाह कर लेता है। उसके बाद उसे फिर शकराज को उपहार के रूप में दे दिया जाता है और पति द्वारा निरादित और अपमानित किया जाता है। अतः कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो नारी के सम्बन्ध में इस नाटक में हमारे सामने आते हैं – जैसे क्या नारी उपहार की वस्तु है? क्या नारी से उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक विवाह किया जाना उचित है? क्या नारी का पुनर्विवाह शास्त्र सम्मत है? क्या पत्नी पति को त्याग सकती है? विशेष रूप से जबकि उसका पति कायर और क्लीव हो और पत्नी के सम्मान की रक्षा करने में असमर्थ हो?

इस नाटक का केन्द्र बिन्दु ध्रुवस्वामिनी है। उसके माध्यम से ही ये प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं और वहीं इसका समाधान भी प्रस्तुत करती है। नाटक में अन्त में ये सभी समस्याएं हमारे सामने आती हैं और पुरोहित शास्त्र की व्यवस्था से इनका समाधान करता है। धर्मशास्त्र की दृष्टि से पति और पत्नी का बराबर अधिकार होता है। विवाह के बाद पत्नी की रक्षा का उत्तरदायित्व पति पर है। पुरोहित घोषणा करता है कि स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल है। ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त में परस्पर विश्वास और सहयोग नहीं था। वह पत्नी के स्वाभिमान की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में ध्रुवस्वामिनी पर उसका अधिकार भी समाप्त हो जाता है। रामगुप्त ने बलात ध्रुवस्वामिनी से विवाह किया था। वह राक्षस विवाह था। पुरोहित इसे भ्रान्तिपूर्ण बन्धन सिद्ध करता है और वह विवाह अवैध सिद्ध हो जाता है और इसलिए पुरोहित गौरव से नष्ट, पति आचरण से पतित और क्लीन होने के कारण रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है। इसके साथ–साथ चन्द्रगुप्त से उसके पुनर्विवाह को भी स्वीकार कर लेता है। ऐसे पतित और क्लीव पुरुष के होते हुए नारी के पर पुरुष को भी दोषपूर्ण नहीं माना जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि ध्रुवस्वामिनी पहला नाटक है जिसमें भारतीय नारी की समस्या को एक नए दृष्टिकोण से उठाया गया है। और इसके साथ–साथ उसका जो समाधान प्रस्तुत किया है वह आज के प्रगतिशील युग के अनुकूल है। कहना न होगा कि इस छोटे से नाटक में प्रसाद जी ने जिस कुशलता से ऐतिहासिकता का निर्वाह किया है उसके माध्यम से आधुनिक युग की ज्वलंत समस्या को चित्रित किया है, वह एक महान् नाटककार के लिए ही सम्भव है।

ध्रुवस्वामिनी नाटक जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों की श्रृंखला में एक सफल नाटक है। जिन विशेष घटनाओं को आधार बना कर इस नाटक का ढांचा निर्मित किया गया है वे घटनाएं समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद उनके दोनों बेटे चन्द्रगुप्त और रामगुप्त के जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। वे घटनाएं समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद चन्द्रगुप्त ने स्वयं हर प्रकार से समर्थ होते हुए भी कुल परम्परा अनुसार राज्य का उत्तराधिकार बड़े भाई रामगुप्त को सौंप दिया था, परन्तु रामगुप्त विलासी स्वभाव और अपने कायर हृदय के कारण उसे सम्भालने में असमर्थ रहा। इसका लाभ उठाकर शकराज ने गुप्त राज्य को हड़पने के लिए आक्रमण कर दिया। रामगुप्त के राज्य की सीमा घेर ली गई और संधि के लिए प्रस्ताव भेजा कि अगर रामगुप्त अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को शकराज को सौंप दे तो दूसरे सामंत की स्त्रियां भी शकराज के सामंतों को समर्पित कर दी जाएं, तो युद्ध बन्द हो सकता है। कायर और विलासी रामगुप्त ने यह प्रस्ताव मान लिया। ऐसी स्थिति में ध्रुवस्वामिनी का रूप धारण कर स्वयं चन्द्रगुप्त शकराज के शिविर में पहुँचा और कामसत्ता शकराज को मार कर विजय प्राप्त की और शकों की सेना को भगा दिया। रामगुप्त ने इस विजय को अपनी ही विजय समझ और चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी और दूसरे सामन्तों को मनमानी आज्ञाएं देनी आरम्भ कर दी।

क्योंकि अपनी ओर से तो रामगुप्त ने धर्म, राज्य तथा कुल की प्रतिष्ठा को भुला कर केवल अपने जीवन की रक्षा के विचार से अपनी महारानी को अपने शत्रु शकराज को सौंप दिया था, इसलिए स्वयं ध्रुवस्वामिनी, चन्द्रगुप्त और उनके रक्षक सामंतकुमारों ने उसकी कोई भी आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। रामगुप्त ने इसे अपना अपमान समझ कर अपने सैनिकों द्वारा चन्द्रगुप्त और दूसरे सामन्त कुमारों को बन्दी बना लिया। ध्रुवस्वामिनी ने रोक टोक की तो उसे भी बन्दिगी बनाने का प्रयत्न किया गया। तब चन्द्रगुप्त ने विद्रोह करते हुए अपने को बन्धन से छुड़ा कर, अपने अधिकारों की घोषणा कर दी। इसी समय ज्यों की रामगुप्त ने चन्द्रगुप्त को अपनी कटार से मार देना चाहा, त्योंही एक सामन्त कुमार ने रामगुप्त की हत्या कर दी।

रामगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के आपसी सम्बन्ध प्रेमपूर्ण नहीं हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि रामगुप्त पौरुषहीन है, नपुंसक है। वह हर समय मदिरा पीकर हिजड़े, बौने और कुबड़े आदि साधारण लोगों के खेल, उपहासों में व्यस्त रह कर अपना समय व्यतीत करता रहता है। ध्रुवस्वामिनी अपना नारी जीवन व्यर्थ समझ कर जलती रहती है। जब समुद्रगुप्त ने अपनी विजय यात्राएं आरम्भ की तब ध्रुवस्वामिनी ध्रुवदेवी के पिता ने कन्या देकर सन्धि कर ली। समुद्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी का विवाह चन्द्रगुप्त से चाहता था, परन्तु उसके अमात्य शिखर स्वामी ने कुल परम्परागत रीति की दुहाई देकर बड़े भाई रामगुप्त से ही ध्रुवस्वामिनी का विवाह कराया। तब से लेकर ध्रुवस्वामिनी के हृदय में चन्द्रगुप्त के प्रति आकर्षण बना रहा। इसका पता दासी के साथ ध्रुवस्वामिनी की बातचीत से लग जाता है। ध्रुवस्वामिनी नपुंसक पति पाकर केवल कुल मर्यादा की रक्षा के लिए घुट–घुट कर जीवन बिताती है।

ध्रुवस्वामिनी को अपने पति रामगुप्त की ओर से कभी अच्छा व्यवहार नहीं मिलता, इसलिए वह जीवन की अपेक्षा मृत्यु को अच्छा समझती है। ऐसी परिस्थितियों में शकराज का आक्रमण होता है और रामगुप्त का सम्पूर्ण शिविर मंडल चारों ओर से घेर लिया जाता है। शकराज सन्धि करने की शर्त के रूप में ध्रुवस्वामिनी की मांग करते हैं। रामगुप्त अपने अमात्य शिखरस्वामी की सलाह को मान कर उस मांग को पूर्ण करके अपने जीवन की रक्षा का निश्चय करता है। अपने पति की इस नीच वृत्ति और कायरता से ध्रुवस्वामिनी क्षुब्ध हो उठती है। वह रामगुप्त के सामने हाथ जोड़कर नारी मर्यादा और गुप्त कुल की रक्षा के लिए प्रार्थनाएं करती है, परन्तु रामगुप्त पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अन्त में ध्रुवस्वामिनी आत्महत्या का निश्चय कर लेती है। लेकिन तभी चन्द्रगुप्त वहाँ आकर उसे रोक लेता है। रामगुप्त अपनी हत्या के डर से भाग निकलता है। और कुछ देर बाद अपने अमात्य के साथ प्रवेश करता है। चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी और कुल की प्रतिष्ठा के लिए निश्चय करता है कि महादेवी के वेश में वह स्वयं शकराज के सम्मुख उपस्थित हो और यदि भाग्य ने साथ दिया तो सारा खेल उलट देने की चेष्टा करे। अपने प्रेमी की उदारता और साहसपूर्ण त्याग देख कर ध्रुवस्वामिनी उस पर और भी मुग्ध हो जाती है और उसके साथ–साथ स्वयं भी शक शिविर में जाती है। चन्द्रगुप्त के हाथों शकराज की मृत्यु होती है और नायक हीन शक सेना छिन्न–भिन्न होकर भाग जाती है।

चन्द्रगुप्त में शासक के सम्पूर्ण गण देखकर और यह पता लगने पर कि वस्तुतः समुद्रगुप्त ने उसी को अपना उत्तराधिकारी चुना था, सब सामन्त एक स्वर में निश्चय करते हैं कि वह सम्राट् पद पर आसीन हो और ध्रुवस्वामिनी उसकी राजमहिषी बने। शिखिर स्वामी पहले तो कुछ विरोध करता है, पर परिस्थिति को अपने प्रतिकूल देखकर चन्द्रगुप्त के पक्ष में हो जाता है। सब प्रकार से निराश होकर रामगुप्त पीछे से चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु इस क्षण एक सामन्त चन्द्रगुप्त की रक्षा के विचार से रामगुप्त का वध कर डालता है।

ध्रुवस्वामिनी नाटक की कथा वेदना से पूर्ण होते हुए भी राजनीति, छल, प्रवचना, देशप्रेम और कुल गौरव की भावनाओं से ओत–प्रोत है। फिर उसके उतार चढ़ाव का क्रम इतना सुन्दर रखा गया है कि स्थल–स्थाल पर चमत्कार उत्पन्न हो उठा है। नाटक में सबसे अधिक मार्मिक स्थिति ध्रुवस्वामिनी की ही दिखाई पड़ती है।

सम्पूर्ण नाटक तीन अंकों में विभाजित है। प्रत्येक अंक में केवल एक दृश्य है। वे दृश्य अपने में पूर्ण और धारावाहिक हैं। प्रत्येक अंक एवं खण्ड की घटनाएं कार्य व्यापार एक स्थानीय ही है। अतः इनका जमाव बहुत ठीक हुआ है। दृश्य की धारावाहिकता और व्यापारों के क्रमिक गुम्फन द्वारा नाटक में अभिनेयता की वृद्धि हुई है।

प्रत्येक के प्रारम्भ में उन सब स्थलों पर जहां दृश्य के बीच में नवीन पात्रों के प्रवेश के कारण वस्तु, स्थिति में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी है, वहां सूचनाओं द्वारा इस प्रकार परिचय दिया गया है कि स्थल एवं विषय सम्बन्धी कोई बात जानने योग्य शेष नहीं रह जाती।

रंगमंच की सुविधा और अनुकूलता का जितना विचार प्रसाद जी ने नाटक में रखा है, उतना किसी अन्य में नहीं। प्रसाद के पूर्व नाटकों (अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त आदि) पर रंगमंच विषयक अनेक आक्षेप हैं। यह नाटक प्रसाद जी की नाट्य कला का प्रौढ़तम प्रतकी है। इसमें दृश्य भी सीधे और सरल हैं। यह सरलता देश, काल, पात्र के ज्ञान में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने देती। थोड़ी सजावट और दो पर्दों से पूरे नाटक का अभिनय हो सकता है। एक पर्दा युद्ध भूमि अथवा शिविर का आवश्यक है दूसरा दुर्ग अथवा प्रकोष्ठ का। हां, उसकी सजावट में अवश्य ही देशकाल के परिचय निर्मित विशेष कुशलता अपेक्षित होगी।

अपने नाटकों के आरम्भिक एवं अन्तिम दृश्यों को उपस्थित करने में लेखक सदैव चतुराई से काम लेता है। इस नाटक में भी आरम्भ और अन्त बड़ा ही आकर्षक एवं प्रभावशाली दिखाई पड़ता है। आरम्भ में जिस प्रकार के प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच गुप्त काल की लक्ष्मी महादेवी ध्रुवस्वामिनी का प्रवेश कराया गया है और वस्तु स्थिति एवं चरित्र की जिस गम्भीरता को उपस्थित किया है, आकस्मिक आकर्षण के लिए उससे बढ़कर कोई अन्य दृश्य क्या हो सकता है?

इसके उपरान्त कार्य व्यापारों का प्रवाह ऐसा तीव्र रूप धारण करता है कि जब तक पुनः हस्तक्षेप नहीं होता, तब तक सामाजिक के हृदय तथा बुद्धि को अवकाश ही नहीं प्राप्त हो सकता कि वह दृष्टि तथा विचार को इधर–उधर ले जाए। प्रस्तुत विकास के साथ–साथ कौतूहल की मात्रा भी बढ़ती चलती है। कार्य व्यापार की श्रृंखला तो अटूट रूप में चलती रहती है, उसके साथ–साथ मानव मन की नाना अन्तर्दशाओं से संघर्ष और उत्थान पतन भी देखने को मिलता हैं। तीनों दृश्यों में सक्रियता का वेश दिखाई पड़ता है। इस सक्रियता की अधिकता से जहाँ कौतूहल, आकर्षण तथा वेदना की सजीवता की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, वहीं वह पात्रों के चरित्रांकन एवं कुल शील परिज्ञान में कुछ बाधक भी हो गई है। इस नाटक में पात्रों के चरित्र उद्घाटन का समय नहीं मिल सका है। कार्य व्यापार की तीव्रता प्रथम अंक की समाप्ति के साथ ही शांत हो सकी है। इस सक्रियता का वेग द्वितीय अंक में अवश्य कुछ कम हुआ है। कोमा, शकराज और मिहिरदेव के संवाद में कार्य की तीव्रता उतनी नहीं जितनी वस्तु स्थितिज्ञापन और विषय विचार की। फिर भी इस स्थितिज्ञापन के परिणाम रूप में धूमकेतु के दर्शन होते हैं और ठीक इसके पश्चात् शकराज की मृत्यु होने पर धूमकेतु के दर्शन का परिणाम सामने आ जाता है।

इस प्रकार प्रत्येक अंक का आरम्भ जैसे नवीन पात्रों और महत्त्वपूर्ण नये–नये विषयों के साथ हुआ है, वैसे ही प्रत्येक अंक की समाप्ति भी इसी क्रम से दिखाई पड़ती है कि नाटक की पूर्णता का स्पष्ट बोध हो

जाता है। सम्पूर्ण अंक के अन्त में मिल जाता है। अत एवं अंकों के अन्तिम दृश्य बड़े ही प्रभावशाली बन पड़े हैं। प्रथम अंक के अन्त में ध्रुवदेवी और चन्द्रगुप्त जैसे विशिष्ट व्यक्तियों को साम्राज्य की सम्मान रक्षा में अपने प्राणों की आहुति देने के लिए उद्यत देखते हैं। और दूसरे अंक की समाप्ति राष्ट्र शत्रु की मृत्यु के साथ होती है। इस प्रकार नाटककार अंकों का आरम्भ और अन्त दोनों का बड़े कौशल से संतुलन करता गया है।

इसके अतिरिक्त फल प्राप्ति का यदि विचार किया जाए तो वह ध्रुवस्वामिनी को ही प्राप्त हुआ है। फल दो हैं – राक्षस विवाह से मोक्ष तथा महादेवी पद की सच्ची प्राप्ति। वे दोनों घटनाएं अन्योन्याश्रित हैं इन दोनों की अधिकारिणी ध्रुवस्वामिनी है और चन्द्रगुप्त सहायक रूप से सम्मुख आया है।

कार्य की पाँच अवस्थाओं का विभाजन तीन अंकों में बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ है। आरम्भ और प्रयत्न की प्रथम अंक में प्राप्तयाशा की, द्वितीय अंक में और नियताप्ति एवं फलागम की, तृतीय में स्थापना हुई है। यों नाटक में आरम्भ में ही मुख्य सन्धि से विरोध का कारण स्पष्ट दिखाई देने लगता है। ध्रुवस्वामिनी कहती है –

''मुझ पर राजा का कितना अनुग्रह है, वह भी आज तक मैं न जान सकी। मैंने तो उनका कभी सम्भाषण सुना ही नहीं.......................................विलासिनियों के साथ मदिरा में उन्मत उन्हें अपने आनन्द से अवकाश कहां।''

दूसरी ओर प्रायः इसी स्थल पर जो उसके हृदय में चन्द्रगुप्त के अनुरागोदय होता है वह भी फल प्राप्ति के आरम्भ की स्पष्ट सूचना है। आरम्भ नाम की कार्यावस्था वहां से चलती है, जहां ध्रुवस्वामिनी ने अपना निश्चय प्रकट किया –

''पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते।''

प्रयत्न नाम की कार्यावस्था वहां से आरम्भ होती है, जहां उसने अपना मंतव्य प्रकट किया है – ''तो कुमार! (चन्द्रगुप्त) हम लोगों का चलना निश्चित ही है। अब इसमें विलम्ब की आवश्यकता नहीं।''

इसके पश्चात् द्वितीय अंक में केवल प्राप्तयाशा का प्रसंग ही चलता है। प्रयत्न का जो रूप प्रथम अंक में उठता है, वह शकराज की मृत्यु तक आता है, इस वध के कारण उसे जो नैतिक बल मिलता है उसी के सहारे वह अपने प्राप्य की ओर अग्रसर हो सकती है।

तृतीय अंक के प्रारम्भ में ही ध्रुवस्वामिनी शक दुर्गवामिनी के रूप में दिखायी देती है – फिर दो बाधाएं शेष थीं – अभी वैवाहिक मोक्ष और साम्राज्य के सहायक सामंतों की स्वीकृति अपेक्षित थी। तृतीय अंक के आरम्भ में जो पुरोहित का सम्मान हुआ है, वह मोक्ष फल को सिद्ध करने के लिए है। कर्मकाण्ड के विरोध स्वरूप ध्रुवस्वामिनी का यह प्रश्न भी इस विवाद को उठाता है।

''आपका कर्मकाण्ड और आपके शास्त्र का क्या सत्य है, जो सदैव रक्षणीय स्त्री की यह दुर्दशा हो रही है।''

इसका उत्तर धर्माध्यक्ष देता है – ''धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।''

इस स्थिति के पूर्व ही शकराज के वध से उत्पन्न हुई फल प्राप्ति की आशा वहां निश्चय रूप धारण कर लेती है, जहाँ चन्द्रगुप्त ने अपने मन में यह निश्चय किया था –

''ध्रुवस्वामिनी मेरी है, (ठहरकर) हां मेरी है, उसे मैंने आरम्भ से ही अपनी सम्पूर्ण भावना से प्यार किया है।''

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कथानक में कार्य अवस्थाओं का पालन भी ठीक एवं सुचारू रूप से हुआ है।

2.1.5 सारांश :

इस पाठ में आप नाटककार प्रसाद की नाट्यकला की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। आपको 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का परिचय भी दिया गया है। इस नाटक के विश्लेषण को समझने के लिए इसे मूल रूप में अवश्य पढ़े।

2.1.6 शब्दावली :

एकरूपता– समानता
षड्यन्त्र – साजिश
प्रचंड – तेज
क्षुब्ध – नाराज़
प्रतिकूल – उल्टा

2.1 .7 बोध प्रश्न :

1. प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक कौन से हैं?
2. प्रसाद के नाटकों की विशेषताएं क्या है?
3. ध्रुवस्वामिनी नाटक का सम्बन्ध इतिहास के किस काल से हैं?
4. रामगुप्त कौन था?
5. चन्द्रगुप्त का परिचय दें?

पाठ संख्या - 2.2 **लेखक : श्री राजिन्द्र कुमार**

ध्रुवस्वामिनी नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा :

2.2.0 उद्देश्य
2.2.1 प्रस्तावना
2.2.2 ध्रुवस्वामिनी नाटक : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
    2.2.2.1 रामगुप्त का परिचय
    2.2.2.2 ध्रुवस्वामिनी का परिचय
    2.2.2.3 नाटक के अन्य पात्र
        (क) चन्द्रगुप्त
        (ख) मंदाकिनी
        (ग) कोमा
2.2.3 सारांश
2.2.4 शब्दावली
2.2.5 बोध प्रश्न

2.2.0 उद्देश्य :

इस पाठ में आपको प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' से परिचित कराया जाएगा। ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास भी प्रसिद्ध घटनाओं को आधार बना कर कल्पना के योग से किसी–न–किसी सत्य की प्रतिष्ठा की जाती है। प्रसाद हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक नाटककारों में से एक है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप,

* प्रसाद की नाट्य कला के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे,
* ऐतिहासिक नाटक ध्रुवस्वामिनी के कथानक एवं पात्रों से भलीभांति परिचित हो सकेंगे और
* गुप्तकाल के प्रमुख सम्राटों की गतिविधियों को नाटक के रूप में समझ पाएंगे।

2.2.1 प्रस्तावना :

'ध्रुवस्वामिनी' हिन्दी के सुप्रसिद्ध नाटककार स्वर्गीय 'जयशंकर प्रसाद जी' की अन्तिम नाट्य रचना है। इस नाटक की कहानी इतिहास की घटनाओं पर आधारित है, अतः इसकी पृष्ठभूमि को समझ लेना आवश्यक है। किन्तु ध्रुवस्वामिनी की ऐतिहासिकता की व्याख्या करने से पूर्व हमारे लिए जानना श्रेयस्कर होगा कि 'ऐतिहासिकता' से हमारा अभिप्राय क्या है तथा साहित्य और नाटक में इसका उपयोग क्यों और कैसे किया जाता है? साथ ही यह भी जान लेना आवश्यक है कि जयशंकर प्रसाद का इतिहास के प्रति क्या दृष्टिकोण था और उन्होंने अपने नाटकों में इतिहास का उपयोग किस दृष्टि से किया, अस्तु आगे क्रमशः इन प्रश्नों पर विचार किया जाता है।

'ऐतिहासिक' या 'ऐतिहासिकता' क्रमशः 'इतिहास' शब्द के विशेषणवाचक एवं भाववाचक रूप हैं जो इसी शब्द से बने हैं। 'इतिहास' शब्द का अर्थ है 'ऐसा ही हुआ था अर्थात् अतीत के प्रमाणिक विवरण को

'इतिहास' कहते हैं। इस दृष्टि से इतिहास साहित्य से अलग विषय है क्योंकि जहाँ साहित्य में कल्पना और भाव के योग के कारण तथ्य, तर्क और प्रमाण कम रह जाते हैं वहाँ इतिहास में कल्पना और भाव के योग के कारण तथ्य, तर्क और प्रमाण कम रह जाते हैं वहाँ इतिहास में घटनाओं, तथ्यों तथा तर्कों को प्रमाणिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसीलिए विद्वानों द्वारा इतिहास को विज्ञान तथा साहित्य को कला का अंत घोषित किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इतिहास और साहित्य दो अलग–अलग विषय हैं, पर फिर भी कभी–कभी कोई साहित्यकार अपनी रचना को शुद्ध कल्पना पर आधारित न करके इतिहास पर आधारित करता है या यों कहिए कि किसी कल्पित घटना या पात्र का वर्णन करने के स्थान पर इतिहास की घटना या पात्र का वर्णन करने लगता है। ऐसी स्थिति में उसकी कृति में 'ऐतिहासिकता' का समावेश हो जायेगा। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अशोक, महाराणा प्रताप या गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन को लेकर काव्य या नाटक लिखेगा तो वहाँ वह उनके जीवन का वर्णन केवल कल्पना के आधार पर नहीं कर सकेगा अपितु उसे इतिहास से भी सहायता लेनी पड़ेगी।

अतः संक्षेप में कथावस्तु का इतिहास पर आधारित होना ही 'ऐतिहासिकता' है।

2.2.2 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

कोई साहित्यकार कवि या नाटककार अपनी रचना में ऐतिहासिकता को क्यों स्थान दे? क्या ऐसा किये बिना उसका काम नहीं चलता? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि जब कोई साहित्यकार इतिहास की किसी घटना या पात्र को लेकर काव्य, नाटक या उपन्यास की रचना करता है तो उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह उसमें इतिहास का ध्यान रखे। इसका कारण यह है कि यदि वह इतिहास के विरुद्ध कोई बात लिखेगा तो उसकी रचना उन पाठकों को प्रभावित नहीं कर सकेगी जिन्हें इतिहास की जानकारी है। ऐसी स्थिति में शिक्षित पाठक उनकी रचना का पूरा आनन्द नहीं ले सकेगा। उदाहरण के लिए यदि कोई नाटककार 'अकबर' को हुमायुं का बेटा दिखाने के स्थान पर उसे उसका भाई दिखाता है या महाराणा प्रताप को दिल्ली का बादशाह बना देता है अथवा औरंगज़ेब को मोटरकार में लंदन की सैर करता हुआ दिखा देता है तो कल्पना कीजिए, समझदार पाठक या दर्शक को यह कितना अस्वाभाविक लगेगा। ऐसी स्थिति में केवल अज्ञानी ही उस रचना की दाद दे सकेगा, अस्तु। ऐतिहासिकता के अभाव में ऐतिहासिक काव्य या नाटक की स्वाभाविकता और सुन्दरता नष्ट हो जाती है। इससे इतिहास को कोई हानि हो या न हो पर साहित्य की सुन्दरता अवश्य नष्ट हो जाती है।

'इतिहास और ऐतिहासिकता' के अन्तर को भी यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है। इतिहास की घटनाओं और पात्रों को लेकर लिखा गया काव्य या नाटक शुद्ध इतिहास नहीं बन सकता, वह अधिक से अधिक ऐतिहासिक ही बन सकता है। तात्पर्य यह है कि साहित्यकार इतिहास की स्थूल घटनाओं एवं रूपों में तो परिवर्तन नहीं करेगा, पर फिर भी उनमें बहुत सी बातें, उसे अपनी कल्पना के बल पर जोड़नी पड़ेंगी। इतिहास में पात्रों के कार्यों का ही उल्लेख मिलता है, उन कार्यों के पीछे कौन सी वृत्तियां, मनोवृत्तियां और भावनाएं काम कर रही थीं–उनका विवरण इतिहास में नहीं मिलता है। अतः इस सब की कल्पना कवि या नाटककार को अपने मन से करनी पड़ती है। अतः कहना चाहिए कि साहित्यकार को अपनी ऐतिहासिक रचना में भी इतिहास के साथ–साथ बहुत कुछ कल्पना और अनुभूति से सहायता लेनी पड़ती है। वास्तव में कल्पना अनुभूति के योग के कारण ही इतिहास साहित्य का रूप धारण करता है।

जयशंकर प्रसाद ने केवल 'ध्रुवस्वामिनी' में ही नहीं, अपितु अपने और भी कई नाटकों में भारतीय इतिहास को प्रेरणास्त्रोत के रूप में अपनाया है। उनके राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ,

स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि सभी प्रमुख नाटक इसके प्रमाण हैं। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि प्रसाद ने जो अपने नाटकों में इतिहास को इतना महत्व दिया जबकि कल्पना के आधार पर सर्वथा भौगोलिक कथानकों की भी सृष्टि कर सकते थे? इसके लिए लेखक की अपनी धारणा सर्वाधिक प्रामाणिक होगी। उनके नाटक 'विशाख' की भूमिका से अवतरित निम्नलिखित मन्तव्य देखिए :–

(क) इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है। क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है उससे बढ़कर और भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं इसमें हमें पूर्ण संदेह है।

(ख) मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने कि हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।

प्रसाद के उपर्युक्त कथन का आशय यही है कि उन्होंने भारतीय जनता को उसके अतीत का गौरव एवं आदर्श समझने के लिए ही ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। जिस समय प्रसाद ने इन नाटकों की रचना की थी, हमारा देश गुलाम था, गुलामी में प्रायः भारतीय लेखक हीन–ग्रंथि से ग्रस्त होकर अपने अतीत और अपनी संस्कृति को तुच्छ समझने लगे थे। प्रसाद ने जनमानस को इस भावना से मुक्त करने के लिए भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों को नाटकों में चित्रित किया। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि प्रसाद कवि और नाटककार होने के साथ–साथ इतिहास के मननशील चिन्तक थे, इसलिए अपने नाटकों में उन्होंने इतिहास की धुंधली घटनाओं को नूतन रूप में आलोकित किया है। यह बात 'ध्रुवस्वामिनी' पर भी भली भांति लागू होती है। इस नाटक की ऐतिहासिक सामग्री भी अस्पष्ट रूप में ही मिलती है जिसे नाटककार ने अपनी प्रतिभा और विदूता के बल पर स्पष्ट एवं तर्क संगत रूप प्रदान किया है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का सम्बन्ध भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग गुप्तकाल से है। इतिहास के अनुसार इस साम्राज्य की स्थापना चन्द्रगुप्त प्रथम ने सन् 320 ई. में की थी। इसी वंश के राजा समुद्रगुप्त ने सन् 324 ई. से 375 ई. तक राज्य किया था। समुद्रगुप्त महान् पराक्रमी योद्धा एवं कुशल शासक थे। उसने उत्तरी भारत के नौ तथा दक्षिण के ग्यारह नरेशों को जीतकर गुप्त साम्राज्य को एक विस्तृत एवं शक्तिशाली रूप प्रदान किया। इसलिए समुद्रगुप्त को 'भारतीय नेपोलियन' के नाम से भी स्मरण किया जाता है।

सम्राट समुद्रगुप्त के अनन्तर उनकी गद्दी पर कौन बैठा – इसके सम्बन्ध में इतिहासकारों में विवाद है। पुराने इतिहासकार यह समझते हैं कि समुद्रगुप्त के अनन्तर चन्द्रगुप्त द्वितीय गद्दी पर बैठा जबकि नयी खोज से पता चला है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय से पूर्व उसका बड़ा भाई रामगुप्त द्वितीय जिस का नाम इतिहास में नहीं मिलता, अवश्य शासक बना था, भले ही वह थोड़े काल के लिए बना हो। ध्रुवस्वामिनी का सम्बन्ध भी रामगुप्त से है। नाटक के अनुसार ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त के विवाहित रानी थी, पर रामगुप्त उसे अपेक्षा और सन्देह की दृष्टि से देखता है। उसे सन्देह था कि ध्रुवस्वामिनी उससे प्रेम नहीं करती अपितु उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त को चाहती है। इसीलिए उसने ध्रुवस्वामिनी एवं चन्द्रगुप्त दोनों पर कड़ी दृष्टि रखी हुई थी।

इसी बीच रामगुप्त की दुर्बलता का लाभ उठाकर सीमावर्ती शक जाति के राजा शकराज ने उनके राज्य पर आक्रमण कर दिया। रामगुप्त की राजधानी को शकराज ने चारों ओर से घेर कर उसके पास सन्देश भेजा कि यदि वह सन्धि करना चाहता है तो अपनी रानी ध्रुवस्वामिनी को उसे (शकराज को) अर्पित कर दे तथा साथ ही अपने दूसरे मन्त्रियों और सामन्तों की स्त्रियों को भी शकराज के योद्धाओं के लिए भेंट कर दे। रामगुप्त एक कायर एवं विलासी राजा था। अतः उसने युद्ध से डरते हुए इस प्रस्ताव को भी स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं, उसने यह भी सोच कि इस तरह इसे दो लाभ होंगे एक तो शकराज से मित्रता हो

जाएगी, दूसरे उससे रनवास का काँटा भी निकल जाएगा। अब चन्द्रगुप्त को यह ज्ञात हुआ कि रामगुप्त ने इस नीच प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है तो उन्होंने इसका घोर विरोध किया और यह योजना बनाई कि वह स्वयं ध्रुवस्वामिनी का रूप धारण कर शकराज के पास जायेंगे। किन्तु ध्रुवस्वामिनी ने अकेले उन्हें नहीं जाने दिया। अन्त में दोनों ही दल बल सहित शकराज के यहाँ पहुँचे तथा उनसे एकान्त में मिलने की प्रार्थना की। शकराज को अकेले पाकर चन्द्रगुप्त ने उसके प्राण ले लिये तथा उसकी सेना तितर–बितर हो गई।

चन्द्रगुप्त की विजय का समाचार सुनकर रामगुप्त भी अपने मन्त्रियों के सहित वहाँ पहुँच जाते हैं तथा चन्द्रगुप्त की जीत का लाभ स्वयं उठाना चाहते हैं। वह ध्रुवस्वामिनी को पुनः रानी के रूप में ग्रहण करना चाहते हैं। किन्तु ध्रुवस्वामिनी इसे स्वीकार नहीं करती। उसका तर्क है – जिस व्यक्ति ने उसे कभी पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया और जिसने उसे खरीदी हुई दासी की भान्ति अपने शत्रु शकराज को अर्पित कर दिया था, उसे क्या अधिकार है कि वह अब उसे अपनी पत्नी माने। उसका पति पत्नी का सम्बन्ध तो उसी क्षण समाप्त हो गया था जिस क्षण निर्लज्जतापूर्वत उसे शकराज की सेवा में जाने का आदेश दे दिया था। राज्य पुरोहित भी धर्मशास्त्र के आधार पर ध्रुवस्वामिनी के मत का सर्मथन करता है। वह स्पष्ट रूप से घोषित करता है कि ध्रुवस्वामिनी का रामगुप्त से मोक्ष या विवाह विच्छेद हो गया है।

इसी बात को लेकर रामगुप्त उत्तेजित हो जाता है और वह चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करता है किन्तु बीच में ही एक सामन्तकुमार रामगुप्त को मार गिराता है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी की जय जय कार के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। यद्यपि नाटककार स्पष्ट रूप से यह नहीं दिखाता कि रामगुप्त के वध ा के अनन्तर चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर लेता है कि किन्तु अप्रत्यक्ष रूप में चन्द्रगुप्त की यह घोषणा की अब मैं ही शकराज के समस्त अधिकारों का स्वामी हूँ, जो न केवल व्यावहारिक दृष्टि से अपितु धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से भी उचित सिद्ध किया गया है।

नाटक के इस कथानक में इतिहास से सम्बन्धित निम्नलिखित गुत्थियां हैं (1) क्या सचमुच सम्राट समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय के बीच में रामगुप्त नामक शासक हुआ था? (2) क्या रामगुप्त का वध चन्द्रगुप्त या उसके साथी सैनिक द्वारा हुआ था? (3) क्या ध्रुवस्वामिनी सचमुच रामगुप्त की पत्नी थी तथा उसने चन्द्रगुप्त से पुनः विवाह कर लिया था?

इन प्रश्नों के सम्बन्ध में स्वयं इतिहासकारों में पर्याप्त मतभेद हैं। अतः इसका स्पष्टीकरण आगे किया जाता है।

2.2.2.1 रामगुप्त का परिचय :

जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, प्रारम्भ में इतिहासकारों के अनुसार सम्राट समुद्रगुप्त के अनन्तर उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ही गद्दी पर बैठा, उन्हें रामगुप्त की कोई जानकारी नहीं थी। किन्तु स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इस बात की खोज की कि समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त के बीच कोई शासक हुआ था, जिसका नाम छूट गया था। उसके अनन्तर डॉक्टर सिलका लेवी, राखालदास बैनर्जी, डॉक्टर कल्लेकर विद्वानों एवं शोध कर्ताओं ने इस सम्बन्ध में गहरी खोज करके यह प्रमाणित किया कि चन्द्रगुप्त से पूर्व कुछ समय तक उसके बड़े भाई रामगुप्त ने राज्य किया था।

रामगुप्त के अस्तित्व का प्रमाण अनेक पुराने ग्रन्थों एवं सिक्कों में मिलता है। विशाख द्वारा रचित संस्कृत नाटक 'देवी चन्द्रगुप्त' का कुछ अंग प्राप्त हुआ है। जिसमें रामगुप्त ध्रुवदेवी एवं चन्द्रगुप्त का नाम एवं वृतान्त दिया हुआ है। इसी प्रकार पूर्वी मालवा में रामगुप्त के नाम से अंकित तांबे के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जिन पर एक ओर सिंह तथा दूसरी ओर रामगुप्त का चित्र अंकित है। मध्यप्रदेश के सागर जिले के एरन तथा विदिशा जिले की खुदाई में भी रामगुप्त के कई सिक्के प्राप्त हुए हैं।

रामगुप्त एक अत्यन्त कायर, विलासी एवं कलंकी शासक था, जिसने शत्रु को अपनी पत्नी तक को भेंट कर दिया था तथा उसने बहुत थोड़े समय राज्य किया था। कदाचित् इन्हीं कारणों से उसका नाम इतिहास से विलुप्त हो गया था, किन्तु गहरे अनुसंधान से उसका अस्तित्व प्रमाणित हो गया है – इसमें कोई सन्देह नहीं।

क्या रामगुप्त का वध स्वयं चन्द्रगुप्त के द्वारा हुआ था या नहीं – इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद हैं। इस सम्बन्ध में नवी शती का एक ताम्रलेख संजान से प्राप्त हुआ, जिसमें स्पष्ट रूप में लिखा है– हत्या भ्रातरमेव राज्य महदद्देवी चवीनस्यथा–अर्थात् जिसने भाई की हत्या करके राज्य और ध्रुवदेवी को प्राप्त किया। इससे स्पष्ट है कि रामगुप्त की हत्या चन्द्रगुप्त द्वारा की गई। यह दूसरी बात है कि स्वयं उसके हाथों हुई या उसके सामन्त के हाथों। प्रसाद जी के नाटक में रामगुप्त का वध सामन्त कुमार के द्वारा दिखाया है, कदाचित् ऐसा उन्होंने अपने नायक के चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए तथा उसे बड़े भाई की हत्या के कलंक से मुक्त कराने के लिए ही किया। अन्यथा इसमें कोई सन्देह नहीं कि रामगुप्त का वध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में चन्द्रगुप्त द्वारा ही हुआ था। लेकिन जिन परिस्थितियों में रामगुप्त का वध हुआ उन परिस्थितियों में चन्द्रगुप्त पाठक व दर्शक की दृष्टि में दोष के भागी नहीं होते। किसी भी राष्ट्रद्रोह, आत्म सम्मान रहित एवं विलासी राजा का अन्त दर्शक को न खलना स्वाभाविक है।

2.2.2.2 ध्रुवस्वामिनी का परिचय :

'ध्रुवस्वामिनी' रामगुप्त की विवाहिता पत्नी थी तथा शकराज ने उसे सन्धि की शर्त के रूप में प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा था तथा इस प्रस्ताव को रामगुप्त ने स्वीकार भी किया था, किन्तु चन्द्रगुप्त ने वेश बदल कर उसका (ध्रुवस्वामिनी) साथ दिया था, यह तथ्य अनेक पुराने ग्रन्थों से प्रमाणित होता है। सातवीं शती में रचित 'हर्ष–चरित' में छटे उच्छावास में बाणभट्ट ने इसी घटना की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि शत्रु के नगर में पर स्त्री की कामना करने वाले शकराज का वध चन्द्रगुप्त ने स्त्री वेश में किया। आगे चलकर इसी ग्रन्थ की टीका लिखते हुए शंकराचार्य ने भी इस घटना पर अपेक्षा कृत विस्तार से प्रकाश डालते हुए लिखा–शकों का आचार्य चन्द्रगुप्त के भाई की स्त्री पर आसक्त था। चन्द्रगुप्त ने ध्रुवदेवी का वेश धारण कर शकाधिपति को मारा। दसवीं ग्यारहवीं शती में रचित 'शृंगार प्रकाश' में भी राजा भोज ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने स्त्री वेश में शत्रु की छावनी में प्रवेश करके शकपति का वध कर दिया। इनके अतिरिक्त विशाखदत्त द्वारा रचित 'देवी चन्द्रगुप्त' नाटक के भी कुछ अंग प्राप्त हुए हैं। जिसमें ध्रुवदेवी सम्बन्धी उपर्युक्त घटना का समर्थन होता है। इतना ही नहीं राजशेखर की 'काव्य मीमांसा' भारविक राजार्जुनीय तथा अबुदसलन अली के 'मजमूल–उ–तवारीख' आदि में तथा उस शताब्दी के प्राप्त ताम्र लेख में ध्रुवदेवी सम्बन्ध घटना का उल्लेख उपलब्ध है आदि।

इन प्रमाणों को देखते हुए इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि ध्रुवदेवी रामगुप्त की पत्नी थी, जिसे शकराज को सौंपने का निर्णय कर लिया गया था। किन्तु चन्द्रगुप्त ने ध्रुवदेवी के वेश में शकराज के पास पहुँचकर उसकी हत्या कर दी। नाटककार जयशंकर प्रसाद ने कथा में थोड़ा सा ही परिवर्तन किया है। एक तो उन्होंने 'ध्रुवदेवी' के स्थान पर 'ध्रुवस्वामिनी' नाम को पसन्द किया है। दूसरे उन्होंने चन्द्रगुप्त के साथ–साथ ध्रुवदेवी के भी शकराज के पास जाने की कल्पना अपने मन से की है।

भण्डारकर के अनुसार यह घटना अलमोड़ा जिले के कार्तिकेय नगर के समीप घटित हुई थी जबकि जयसवाल जी के मतानुसार यह युद्ध 374 ई. से 380 ई. के बीच में कांगड़ा जिले के अभिवाल स्थान पर हुआ था, जहाँ प्रथम सिक्ख युद्ध भी हुआ था।

यहाँ एक प्रश्न यह भी उठ सकता है कि क्या उस युग में विधवा विवाह या पति से सम्बन्धविच्छेद या पुनर्विवाह की प्रथा हिन्दू समाज में प्रचलित थी? जिन लोगों को भारतीय इतिहास का सम्यक ज्ञान नहीं है, उन्हें यह बात कदाचित् अस्वाभाविक सी लगेगी। किन्तु वास्तव में उस युग का समाज बड़ा प्रगतिशील था। पुराने धर्मग्रन्थों तथा स्मृति ग्रन्थों में यह विधान मिलता है कि यदि पति की मृत्यु हो गयी हो तो या वह सन्यासी हो गया हो अथवा वह पुसत्वहीन या पतित हो गया हो तो नारी पुनर्विवाह की अधिकारिणी है। नारद स्मृति पाराशर स्मृति में भी यह बात स्पष्ट रूप में कही गयी है। ध्यान रहे इन स्मृतियों का रचनाकाल भी गुप्त युग के आस–पास पड़ता है। इसी प्रकार कोटिल्य ने भी 'अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत स्पष्ट रूप में यह लिखा था कि यदि पति सदा के लिए राजा के द्वारा बन्दी बना लिया गया हो या पुंसत्वहीन हो गया हो अथवा उसका पतन हो गया हो तो पत्नी दूसरा पति स्वीकार कर सकती है। ऐसी स्थिति में ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त से दूसरा विवाह करना उचित ही सिद्ध होता है। जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक में यह लिखा कि रामगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी का कभी पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया था तथा उसे शत्रु को सौंप देने का निर्णय कर लिया था, साथ ही चन्द्रगुप्त के प्रति उसके मन में गहरा आकर्षण विद्यमान था – ध्रुवस्वामिनी के पुनर्विवाह को सर्वथा उचित सिद्ध कर दिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्रुवस्वामिनी नाटक का वृत्त बहुत कुछ इतिहास पर आधारित है।

यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि जब साहित्यकार इतिहास को अपनी रचना का आधार बनाता है। तो उसे कल्पना की भी सहायता लेनी पड़ती है अन्यथा उसकी रचना साहित्यिक सौन्दर्य से विभूषित नहीं हो पाती। इतिहास के धुंधले चित्रों में कथासार कल्पना का नवरंग भर कर उन्हें नवस्वरूप में डालकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। प्रसाद ने भी अपने नाटकों में सर्वत्र ऐसा किया है। ध्रुवस्वामिनी में भी अनेक पात्र प्रसाद की कल्पना पर आधारित हैं। मुख्यतः मंदाकिनी, कोमा, खिंगल, शिखर स्वामी, पुरोहित तथा अन्य दास–दासियां आदि शुद्ध कल्पना के द्वारा निर्भित हैं। इन पात्रों की चारित्रिक प्रवृतियों एवं भावनाओं के चित्रण में नाटककार ने अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग किया है। साथ ही रामगुप्त के चरित्र की नीचता ध्रुवस्वामिनी के भावों की उच्चता एवं चन्द्रगुप्त के उदात्त रूप का चित्रण प्रसाद ने अपनी कल्पना शक्ति के बल पर किया है क्योंकि पूर्ववर्ती ग्रन्थों में ये पात्र इतने सजीव रूप में उपलब्ध नहीं होते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्रुवस्वामिनी एक उच्चकोटि का ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसमें नाटककार ने केवल इतिहास की उपलब्ध सामग्री का ही उपयोग नहीं किया अपितु उसे सुसंगत, प्रामाणिक और कलात्मक रूप भी प्रदान किया है। प्रसाद ने अपने नाटकों के द्वारा इतिहास के अन्धकारपूर्ण पक्षों में नया प्रकाश डाला है और उसकी टूटी हुई शृंखला को जोड़ने में योग दिया है। यह बात उसके अन्य नाटकों की भान्ति ध्रुवस्वामिनी पर लागू होती है। यहाँ यह भी ध्यान में रखने की बात है कि अब तक इतिहासकारों की दृष्टि में चन्द्रगुप्त भाई के वध के कलंक से और ध्रुवस्वामिनी अपने पति के हत्यारे की पत्नी बन जाने के कलंक से ग्रसित थी। उन्हें इस कलंक से मुक्ति कोई इतिहासकार नहीं अपितु कोई साहित्यकार ही दिलवा सकता था। प्रसाद ने उनकी परिस्थितियों और मनस्थितियों का चित्रण इस ढंग से किया, जिससे पाठक या दर्शक को उनके साथ पूर्ण सहानुभूति हो जाती है और वे उनकी दृष्टि में दोषी या कलंकी नहीं रहते।

इस नाटक से यह भी सिद्ध होता है कि उस युग में भारतीय समाज अत्यन्त प्रगतिशील था। वह इतना रूढ़िग्रस्त नहीं था कि किसी भी स्थिति में नारी को विवाह–विच्छेद एवं पुनर्विवाह की अनुमति न दे। उस युग की संस्कृति एवं मनः स्थिति को प्रसाद ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

अस्तु, ऐतिहासिकता, सामाजिकता एवं कलात्मकता उन तीनों ही दृष्टियों से ध्रुवस्वामिनी एक उच्चकोटि का सफल नाटक है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

2.2.2.3 नाटक के अन्य पात्र :

नाटक में पात्रों का विशिष्ट स्थान होता है। पात्र एक ऐसा माध्यम है जिनके द्वारा नाटककार एक ओर तो अपने दृष्टिकोण को पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता है दूसरी ओर कथानक को निश्चित लक्ष्य तक ले जाता है। इस विषय में डॉ. रघुवंश ने लिखा है – कथानक की घटनाओं में चरित्र का स्वरूप या संकेत तो रहेगा ही, उसके बिना घटनाओं का महत्त्व और उपयोगिता ही क्या रह जाती है।

पात्रों का अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है – मुख्य पात्र, गौण पात्र, वर्गगत पात्र, व्यक्तिगत पात्र, स्थिर तथा गतिशील पात्र। मुख्य पात्रों के बिना नाटक की कल्पना ही सम्भव नहीं। वर्गगत पात्र वे हैं जो अपनी चारित्रिक विशेषताओं के साथ समाज के किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। जो पात्र स्थिर कहलाते हैं। गतिशील पात्रों के चरित्र में विकास होता रहता है। प्रसाद के पात्र व्यक्तिगत, स्थिर तथा गतिशील सभी श्रेणियों के हैं।

प्रसाद के नाटक प्रायः ऐतिहासिक हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति के उज्जवल इतिहास को अपना वर्ण्य–विषय बनाया है। इसीलिए उनके नाटकों के अधिकांश पात्र इतिहास प्रसिद्ध हैं। ऐसे पात्रों के चित्रण में कुछ सुविधाएं होती हैं, तो सीमाएं भी। नाटककार को पात्र के निर्माण में अधिक श्रम नहीं करना पड़ता, परन्तु दूसरी ओर सीमाएं नाटककार को पात्र के चरित्र में अधिक परिवर्तन नहीं करने देती। फिर नाटककार अपनी मौलिकता का प्रदर्शन कैसे करें? डॉ. राम अवध द्विवेदी का कथन है – 'लेखक की मौलिकता केवल इस बात में दिखाई पड़ती है कि वह इन पात्रों को प्रस्तुत करते हुए कुछ नवीन प्रवृत्तियों, उद्देश्यों तथा मानसिक अवस्थाओं का समावेश इस प्रकार करता है कि साधारणीकरण में अभीष्ट की सिद्धि होती है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में मंदाकिनी, मिहिरदेव पात्रों की सृष्टि नाटककार की कल्पना की उपज है। इन काल्पनिक पात्रों में कृत्रिमता नहीं, क्योंकि इन्हें ऐतिहासिक पात्रों के साथ सुसम्बद्ध कर दिया गया है।

ऐतिहासिक नाटकों में पात्रों की संख्या अधिक होती है। इन्हें सम्भाल पाना नाटककार के लिए कठिन हो जाता है इनसे मुक्ति पाने के लिए कहीं–कहीं साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चन्द्रगुप्त की तीन प्रेमिकाएं हैं – कल्याणी, कार्नेलिया तथा मालविका। कार्नेलिया को सफलता दिलाने के लिए मालविका और कल्याणी को मार्ग से हटा दिया गया है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में ऐसी बात नहीं। इस नाटक की पात्र–योजना सफल है। ध्रुवस्वामिनी, रामगुप्त, चन्द्रगुप्त, शिखर स्वामी, शकराज तथा कोमा–सभी पात्र आवश्यक है।

नाटक में चरित्र–चित्रण की दो पद्धतियां होती हैं – प्रत्यक्ष अथवा विश्लेषणात्मक, परोक्ष अथवा नाटकीय। प्रथम शैली में स्वयं नाटककार रंगीन तूलिका से पात्रों के चरित्र की रेखाओं को उभार देता है। नाटकीय शैली में नाटककार मौन रहता है। घटनाओं के घात–प्रतिघात द्वारा पात्रों का चरित्र प्रकाश में आता है। दूसरी शैली अत्याधिक प्रभावपूर्ण है। ध्रुवस्वामिनी नाटक में इसी का महत्त्व है। स्वगत कथनों के द्वारा भी चरित्र चित्रण हुआ है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में प्रसाद जी ने उपयोगितावादी दृष्टि से आदर्श की पृष्ठभूमि पर पात्रों का चरित्र–चित्रण किया है। एक पात्र की क्षुद्रता तथा क्रूरता दिखलाकर दूसरे पात्र की चारित्रिक उच्चता प्रस्तुत की है। रामगुप्त पतित तथा घृणित है, इसी कारण पाठक चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी के प्रणय सम्बन्ध को उचित मान लेता है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के पात्र नियतिवाद से भी प्रभावित हैं। नाटककार पात्रों के मानिसक द्वन्द्व को चित्रित करने में विशेष सफल हुआ है। ध्रुवस्वामिनी के मन में रामगुप्त की क्लीवता और चन्द्रगुप्त के प्रति उसके आकर्षण के कारण द्वन्द्व है। कोमा कर्त्तव्य और प्रणय भाव के संघर्ष से पीड़ित है। ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त को पसन्द नहीं करती, इसी कारण रामगुप्त के मन में हलचल है। इस प्रकार द्वन्द्व तथा संघर्ष की पृष्ठभूमि पर ही पात्रों का विकास हुआ है।

प्रसाद के चरित्र चित्रण की प्रमुख विशेषता है। नारी चरित्र को उदात्त रूप में प्रस्तुत करना। प्रसाद की नारी दया–ममतामयी तथा अगाध विश्वास के वैभव से युक्त है। दुर्भाग्यवश यदि पत्नोन्मुख हो जाती है तो शीघ्र उभर जाती है। विलासिता, ईर्ष्या, दूषित भावनाओं से वह अपने को सहज की मुक्त कर लेती है। वास्तव में प्रसाद के अन्य नाटकों की अपेक्षा नारी पात्र विशिष्ट है। ध्रुवस्वामिनी द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त कर ही चन्द्रगुप्त आगे बढ़ता है। 'ध्रुवस्वामिनी' एक प्रकार से नारी प्रधान नाटक है। यह नाटक पात्र–योजना तथा चरित्र चित्रण की दृष्टि से अत्यन्त सफल है।

ध्रुवस्वामिनी नाटक की नायिका तथा प्रधान पात्र है। डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के निम्नलिखित कथन से नाटक में इसकी वास्तविक स्थिति का परिचय मिलता है – "सारे कार्य व्यापारों में मूल से उसी का सम्बन्ध है और प्रधान फल की उपभोक्ता भी वहीं हैं। अन्य सभी पात्र उसके चरित्र को समझाने में ही सहायता देते है जैसे रामगुप्त का चरित्र उसके पतत‍ीत्व व नारीत्व को उभारता है, तो चन्द्रगुप्त व मंदाकिनी के माध्यम से आधुनिक नारी को अमानवीय बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए प्रेरित किया है।''

आरंभ में ध्रुवस्वामिनी हमारे सम्मुख रामगुप्त की राजमर्हिषि के रूप में होती है। यह पद उसके पास नाम–मात्र का ही है, वास्तव में उसकी स्थिति स्वर्ण पिंजरे में पड़े एक पक्षी के समान है। वह अपने जीवन की विवशता तथा निरीहता इन शब्दों में व्यक्त करती है – ''इस राजकुल के अन्तः पुर में मेरे लिए न जाने कब से नीरव अपमान संचित रहा। जो मुझे आते ही मिला – इस राजकीय अन्तः पुर में सब जैसे एक रहस्य छिपाते चलते हैं। बोलते है और मौन हो जाते हैं – यह तो स्वर्ण पिंजरे हैं।'' रामगुप्त उसे शकराज के पास उपहार रूप में भेजने का निश्चय करता है तो उसका नारीत्व कराह उठाता है। वह अपनी रक्षा के लिए रामगुप्त से प्रार्थना करती है। रामगुप्त द्वारा अपमानित होकर उसका नारीत्व जाग जाता है। वह नारी के पम्परागत दुर्बल संस्कारों से मुक्त होकर एक सिंहनी की भान्ति गरज पड़ती है। ''मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु शीतलमणि नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा ह्रदय उष्ण है और उसमें आत्म सम्मान की ज्योति है।'' इस रूप में ध्रुवस्वामिनी का नवजन्म होता है।

ध्रुवस्वामिनी निर्भीक है, उसे आत्म सम्मान का विशेष ध्यान है। वह रामगुप्त से कहती है – ''मैं केवल यह कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी अपशु–सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते।''

ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है परन्तु परिस्थितिवश उसे रामगुप्त से विवाह करना पड़ता है। रामगुप्त उसकी प्रेम पिपासा को शान्त नहीं कर पाता। उसकी वेदना इन शब्दों में मुखर उठती है – ''मुझ पर राजा का कितना अनुग्र है, यह भी आज तक न जान सकी। मैंने तो कभी उनका मधुर सम्भाषण सुना ही नहीं। विलासिनियों के साथ मदिरा में उन्हें अपने ही आनन्द से अवकाश कहाँ? इस परिस्थिति में यदि उसका चन्द्रगुप्त के प्रति थपकी देकर सुलाया गया प्यार जाग उठे तो भला आश्चर्य ही क्या? चन्द्रगुप्त को देखकर वह आत्महत्या का विचार छोड़ देती हैं। चन्द्रगुप्त नारी वेश में शकराज के पास जाना चाहता है परन्तु

ध्रुवस्वामिनी के लिए अपने प्रेमी को एकांकी भेजना स्वीकार्य नहीं, वह चन्द्रगुप्त से कहती है – ''कुमार यह मृत्यु और निर्वासन का सुख तुम अकेले ही लोगे, ऐसा नहीं हो सकता – हम दोनों ही चलेंगे। मृत्यु के गहवर में प्रवेश करने के समय भी तुम्हारी ज्योति बनकर बुझ जाने की कामना करती हूँ। 'कुमार तुमने वही किया जिसे मैं बचाती रहीं। तुम्हारे उपकार के स्नेह की वर्षा से मैं भीगी जा रही हूँ। और इस वक्षस्थल में दो हृदय हैं क्या? जब अन्तरग हां करना चाहता है तब ऊपरी मन ना क्यों कहला लेता है?''

ध्रुवस्वामिनी को उस धर्म से घृणा है जो मानव को पीस डाले। वह पुरोहित से कहती है, ''इतना बड़ा उपहास धर्म के नाम पर? स्त्री की आज्ञाकारिता की यह पैशाचिक परीक्षा मुझ से बलपूर्वक ली गई है।'' वह चन्द्रगुप्त को प्रेरित करती हुई कहती है – ''झटक दो इन लौह श्रृंखलाओं को। यह मिथ्या ढोंग नहीं सहेगा। तुम्हारा क्रुद्ध दुर्देव भी नहीं।''

ध्रुवस्वामिनी भावुक है, तो बौद्धिकता की मूर्ति भी। उसकी भावुकता उससे कहलाती है – ''कुमार की स्निग्ध, सरल और सुन्दर मूर्ति को देखकर कोई भी प्रेम से पुलकित हो सकता है'' – वह बुद्धि के बल पर पुरोहित के तर्कों को काट देती है – ''संसार मिथ्या है या नहीं यह तो मैं नहीं जानती, परन्तु आप, आपका कर्मकांड, आपके शास्त्र क्या सत्य है? जो सदैव रक्षणीय स्त्री की यह दुर्दशा हो रही है।''

ध्रुवस्वामिनी के चरित्र का विकास आकर्षक तथा स्वाभाविक है। नारी सुलभ दुर्बलताओं के होते हुए भी उसका व्यक्तित्व सशक्त है। उसके चरित्र में नारी के नवीन रूप की झांकी है।

(क) **चन्द्रगुप्त :**

समुद्रगुप्त का पुत्र और रामगुप्त का अनुज चन्द्रगुप्त 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का नायक है। इसके चरित्र के अधिकांश नायकोचित गुण उपलब्ध हैं। इसे नाटक के अन्त में केवल राजसिंहासन की प्राप्ति नहीं होती, ध्रुवस्वामिनी भी मिल जाती है।

चन्द्रगुप्त अपने बड़े भाई रामगुप्त के स्वभाव के विपरीत कुल मर्यादा की रक्षा के प्रति अधिक सजग है। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को शक–नरेश के पास उपहार स्वरूप भेजने का निश्चय करता है। यह चन्द्रगुप्त को सहाय नहीं। उसकी स्वाभिमानी आत्मा विद्रोह कर उठती है। वह कहता है – ''यह नहीं हो सकता, महादेवी मर्यादा के लिए, उस स्वर्गीय गर्व को इस प्रकार पद–दलित न होना पड़ेगा।'' आरम्भ में मर्यादा की रक्षा के लिए वह अपने राज्याधिकार तथा वाग्दत्ता पत्नी को मौन ही छिनते हुए देखता रहता है। पानी सिर के ऊपर हो जाता है तो मर्यादा पालन की भावना ही उसे राज्याधिकार ग्रहण करने को प्रेरित करती है। वह रामगुप्त से कहता है–''क्षमा देने का अधिकार भी तुम्हारा नहीं रहा। आज तुम राजा नहीं हो। तुम्हारे पाप प्रायश्चित की पुकार कर रहे हैं। न्याय निर्णय के लिए प्रतीक्षा करो और अभियुक्त बनकर अपने पापों को सुनो।'' चन्द्रगुप्त कर्तव्य निष्ठा से प्रेरित हो यह पग उठाने को विवश होता है। शक–शिविर में जाने का वह निश्चय करता है, तो कर्त्तव्य की निष्ठा से प्रेरित हो यह पग उठाने को विवश होता है। शक–शिविर में जाने का वह निश्चय करता है, तो कर्त्तव्य की पुकार इसे तुरन्त इसे तुरन्त क्रियान्वित भी करती है। शकराज के वध के अनन्तर वह लौट जाना चाहता है। मेरा कर्त्तव्य पूर्ण हो चुका, अब यहाँ मेरा ठहरना अच्छा नहीं।''

चन्द्रगुप्त के प्रेम में संयम और गम्भीरता है। रामगुप्त चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी को अनाधिकार पूर्वक छीन लेता है। मर्यादा पालन तथा भीषण गृहकलह से बचने के लिए वह प्रतिकार नहीं करता। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वह मन में दुःखी नहीं। वह कहता है – ''मेरे हृदय के अन्धकार में प्रथम किरण सी आकर जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया था, उसको भी मैंने केवल इसलिए भूलने का प्रयत्न किया।'' ध्रुवस्वामिनी को अपनी प्रेमभावना से अवगत कराता तो वह उद्वेलित हो उठता है – ''विधान की स्याही का एक बिन्दु गिर कर भाग्य लिपि पर कालिमा चढ़ा देता है। मैं आज यह स्वीकार

करने में भी संकुचित हो रहा हूँ कि ध्रुवदेवी मेरी है। हां, वह मेरी है, उसे मैंने आरम्भ से ही अपनी सम्पूर्ण भावना से प्यार किया है। मेरे हृदय के गहन अन्तः स्थल से निकली हुई यह मूक स्वीकृति आज बोल रही है।'' – इस स्थिति में भी वह संयम का पथ नहीं छोड़ता। उसका कर्त्तव्य पूरा हो चुका है। वह ठहरना नहीं चाहता। वह कहता है – ''राजाधिराज का सामना होते हुए क्या हो जाएगा, मैं कह नहीं सकता। क्योंकि अब यह राजनीति प्रपंच में नहीं सह सकता।'' वह प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम, त्याग और बलिदान की अपेक्षा करता है। चन्द्रगुप्त एक सच्चे प्रेमी के रूप में ध्रुवस्वामिनी के लिए अपना जीवन संकट में भी डाल देता है।

चन्द्रगुप्त वीर, ओजस्वी, संयमी तथा आदर्श प्रेमी है, परन्तु जिस रूप में उसे नाटक में चित्रित किया गया है उससे उसका रूप इतना प्रभावी नहीं बन सका।

(ख) **मन्दाकिनी :**

मन्दाकिनी की सृष्टि नाटककार ने कल्पना द्वारा की है इतिहास में उसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। तो भी मन्दाकिनी का गौरव किसी रूप में कम नहीं होता। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं ''इन पात्रों को भी ऐतिहासिक ही मानना चाहिए, क्योंकि इनका अस्तित्व चाहे तथ्य–परक न हो परन्तु तत्व–परक अवश्य है।''

मन्दाकिनी कौन है? इसका नाटक में कोई उल्लेख नहीं। वह ध्रुवस्वामिनी को 'भाभी' कहर कर पुकारती है। इससे अनुमान होता है कि वह रामगुप्त तथा चन्द्रगुप्त की बहिन है। कुछ आलोचक इसे पारिचारिका मानते हैं, परन्तु मन्दाकिनी की निर्भीकता और अन्याय का विरोध करने की वृत्ति को दृष्टि में रखकर ऐसा मानना उचित प्रतीत नहीं होता। मन्दाकिनी का स्वतन्त्र अस्तित्व हैं। वह चन्द्रगुप्त नाटक की अलका की भान्ति है। वह जब गाती है – ''क्रन्दन कंपन न पुकार बने, जिस साहस पर निर्भरता हो'' – तो अन्याय के दमन के लिए उद्धृत एक वीरबाला का रूप उभर आता है।

निर्भीकता मन्दाकिनी के व्यक्तित्व का विशेष गुण है। वह न्याय संगत बात कहने में कदापि भयभीत नहीं होती। रामगुप्त को उसकी कायरता के लिए धिक्कारती हुई कहती है – ''राजा का भय मर्यादा का गला नहीं घोंट सकता। तुम लोगों को यदि कुछ भी बुद्धि होती तो अपनी इस कुल मर्यादा को शत्रु के दुर्ग में यों न भेज देते। भगवान् ने स्त्रियों को उत्पन्न करके ही अधिकारों से वंचित नहीं किया है। किन्तु तुम लोगों की दास्यवृत्ति ने उन्हें लूटा है। इस परिषद् से मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड़कर जिन लोगों ने राज किल्विष किया हो उन्हें दण्ड मिलना चाहिए।'' शिखर स्वामी की कूट मंत्रणा पर वह चोट करती है। ''राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है। जब भी उस राजा की रक्षा होनी चाहिए। अमात्य या कैसी विवशता है। तुम मृत्यु दण्ड के लिए उत्सुक, महादेवी आत्महत्या के लिए प्रस्तुत।''

मन्दाकिनी विवेकशील हैं अपने विवेक द्वारा ही वह परिस्थिति की यथार्थकता का सहज ही में अनुमान लगा देती है। वह रामगुप्त और चन्द्रगुप्त का अन्तर हृदयंगम कर लेती है। वह कहती है – ''मुझे हृदय कठोर करके अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए यहां रूकना होगा।'' वह अपने विवेक द्वारा ही ध्रुवस्वामिनी के हृदय में चन्द्रगुप्त के लिए विद्यमान अनुराग का अभाव पा लेती है। उसे रामगुप्त तथा शिखर स्वामी के कूट विधान का अन्त भी समीप दिखाता है। ''तुम लोगों की नीचता की गाथा सुना रही हूँ। अनार्य सुन नहीं सकते? तुम्हारी प्रवंचनाओं ने जिस नाटक की सृष्टि की है, उसका अन्त समीप है।''

मन्दाकिनी नारी है। नारी की वेदना, उसके घुट–घुट कर मरने के स्वभाव से वह परिचित है। इसी कारण वह ध्रुवस्वामिनी तथा चन्द्रगुप्त को निकट नाने का प्रयत्न करती है। वह चन्द्रगुप्त को प्रोत्साहन देती हुई कहती है – ''हृदय में नैतिक साहस, वास्तविक प्रेरणा और पौरुष की पुकार एकत्र करके सोचिए तो कुमार कि अब आपको क्या करना चाहिए।''

उसे नारी मन की गहरी परख है – ''नारी हृदय जिसके मध्य बिन्दु में शास्त्र का एक मन्त्र कील

की तरह गड़ गया है और उसे अपने सरल प्रर्वतन चक्र में घूमने से रोक रहा है। निश्चय ही वह कुमार चन्द्रगुप्त की अनुरागिनी है।''

पुरुष के हाथों नारी का तिरस्कार देखकर मन्दाकिनी का हृदय कोमा के लिए सहानुभूति के भाव से भर जाता है। वह कहती है – ''स्त्रियों के बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं, कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलम्ब खोजने वाले हाथों से पुरुष के चरणों को पकड़ती है और वह सदैव ही इसको तिरस्कार घृणा और दुर्दशा की शिक्षा से उपकृत करता है। तब भी वह बावली मानती है?''

धर्म के नाम पर नारी को बन्धन में जकड़ देना मन्दाकिनी को स्वीकार नहीं। वह पुरोहित को ललकार कर कहती है – ''आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म बन्धन में बांधकर उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियां आपत्ति से अवलम्ब मांग सकें?''

मन्दाकिनी के शब्दों में प्रताड़ित नारी का चीत्कार और क्रन्दन है और उसके विद्रोह में आधुनिक नारी का विद्रोह। मन्दाकिनी परमार्थ–पथ की साधिका है। वह प्रसाद की दया ममतामयी नारी का आदर्श है।

(ग) कोमा :

कोमा भी 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की एक काल्पनिक पात्रा है। शकराज के धर्मगुरु आचार्य मिहिरदेव की उस पालित कन्या के चित्रण में नायककार प्रसाद ने अपना कवि–हृदय उड़ेल दिया है। इसमें नारी की सुकुमारता, सहजता, सहृदयता तथा क्रान्ति भी है।

कोमा कोमलता तथा करुणा की मूर्ति है। अपने बलिदान से जीवन में एक करुण गन्ध जोड़ने वाली यह फूल सी सुकुमारी है। विधि की यह विडम्बना ही कहिए कि कोमा जैसी सुकुमार हृदय युवती नृशंस, क्रूर शकराज को दिल दे बैठती है। कोमा सौन्दर्य की उपासिका है। उसे पुरुषों को धूलि धूसरित देखना पसन्द नहीं। नाटक की भीड़ में कोमा ही बसन्त आनन्द ले पाती है। बसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उस स्पर्श से परिचित नहीं। प्रसाद ने प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से कोमा की मानसिक भावनाओं को प्रस्तुत किया है। उदास पादप उसके मातृहृदय की उदासी के व्यंजक हैं तथा ढलता सूर्य उसके जीवन में आने वाली निराश यामिनी का प्रतीक है।

मिहिर देव की शिक्षा के प्रभाव से कोमा का दार्शनिक होना स्वाभाविक ही है। कोमा का दर्शन नीरस न होकर, अनुभूति से युक्त है। वह संसार के कर्म–संघर्ष को मंगलमय मानती हुई कहती है – ''प्रश्न स्वयं किसी के सामने नहीं आते। मैं तो समझती हूँ कि मनुष्य उन्हें जीवन के लिए उपयोगी समझता है। मकड़ी की तरह लटकने के लिए अपने आप ही जाला बुनता है। जीवन का प्राथमिक प्रसन्न उल्लास मनुष्य के भविष्य में मंगल और सौभाग्य को आमन्त्रित करता है। अभावमयी मधुरता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या, अच्छा नहीं है?'' कोमा के शब्दों में प्रसाद का दर्शन मुखर हो उठा है।

कोमा आदर्श अनुरागमयी है। वह शकराज को अपना मधुर प्रेम अर्पित करती है, परन्तु उसे एक प्यास सुरा चाहिए। प्रेम के पथ पर मिलने वाली वेदना, निराशा से कोमा परिचित है। उसे ज्ञात है कि प्रेम की चिनगारियां शाप बनकर भी उड़ती हैं। फिर भी वह प्रेम–पथ की पाथिका बनती है। प्रेम के सम्मुख कुछ और नहीं दीख पड़ता। जब सामने से आते तीव्र आलोक की तरह आँखों में प्रकाशपुंज उड़ेल देता है, तब सामने की ओर सभी वस्तुएं स्पष्ट हो जाती हैं – ''प्रत्येक नारी के जीवन में प्रेम करने की ऋतु आती है जिसमें उसे प्रेम करना ही चाहिए। प्रेम न तो कुछ देखता है और न सोचता है, न समझता ही

है।'' कोमा का शकराज के प्रति प्रणय त्याग और बलिदान की मार्मिक कहानी है। वह शकराज को कुकृतियों से दूर नहीं कर पाती, तो स्वयं उसके मार्ग से हट जाती है। मिहिरदेव उसे साथ चलने को कहते हैं तो उसके हृदय में प्रेम और कर्त्तव्य का द्वन्द्व होता है। वह मार्मिक स्वर से कहती है – ''तोड़ डालूँ पिताजी मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी बल्लरी, मेरी आँखें बन्द कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गई है। देंदू एक झटका उसकी हरी–भरी पत्तियां कुचली जायें और वह छिन्न हो कर ध ूल में लोटने लगा। ना ऐसी, कठोर आज्ञा न दो।'' वह शकराज द्वारा तिरस्कृत होकर चली जाती है, परन्तु प्रेम–भाव को विस्मृत कर सकना उसके लिए कठिन है। वह अपने हृदय की व्यथा इस प्रकार प्रकट करती है – ''प्रेम का नाम न लो। यह एक पीड़ा थी, जो छूट गई। उसकी कसम धीरे–धीरे दूर हो जाएगी। राजा मैं तुम्हें प्यार नहीं करती, मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी पुरुष मूर्ति पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों पर खड़े रहने की दृढ़ता थी। इस स्वार्थ–मलिन, कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं।'' कोमा ने प्रेम किया तो मिला क्या? उसके अपने शब्दों में, ''वही, जो स्त्रियों को प्रायः मिला करता है निराशा। निष्पीड़त और उपहास।''

कोमा निर्भीक है। मन की बात कहने में वह संकोच नहीं करती। वह शकराज के कुकृत्य की भर्त्सना करते भी भयभीत नहीं होती – ''मेरे राजा ! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विचिन्न कराकर अपने गर्व की तृप्ति के लिए कैसा अनर्थ कर रहे हो।'' वह शकराज का शव मांगते हुए ध्रुवस्वामिनी से भी कह देती है – ''आज तुम्हारी विजय का अन्धकार तुम्हारे शाश्रचत स्त्रीत्व को ढक ले, किन्तु सबके जीवन में एक बार प्रेम की दीवाली जागती है।''

कोमा भारतीय नारी का आदर्श प्रस्तुत करती है। यह शकराज के लिए जीवित थी, उसी के साथ मरने की भी इच्छुक है।

ध्रुवस्वामिनी तथा कोमा दोनों प्रेम में तड़पती रहती है। कोमा भारतीय नारी के आदर्श की परिचायक है तो ध्रुवस्वामिनी रूढ़ियों की श्रृंखला तोड़ने वाली नारी का प्रतीक।

2.2.3 सारांश :

इस पाठ के अध्ययन के बाद आपको ऐतिहासिक नाटकों के प्रति पर्याप्त जानकारी प्राप्त हुई है। आपने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की ऐतिहासिकता का ज्ञान भी प्राप्त किया और साथ ही नाटक के सभी पात्रों की जानकारी प्राप्त की है। अगले पाठ में हम आपको इस नाटक के तात्विक विश्लेषण से परिचित कराएंगे।

2.2.4 शब्दावली :

नूतन	–	नवीन
राष्ट्र द्रोह	–	राष्ट्र के साथ धोखा
दूषित	–	गंदी
अवलम्ब	–	सहारा
क्रन्दन	–	रोना
सुकुमार	–	कोमल

2.2.5 बोध प्रश्न :

1. 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक किस प्रकार का नाटक है?
2. 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का सम्बन्ध भारतीय इतिहास के किस काल से है?
3. रामगुप्त का परिचय दें।
4. रामगुप्त किस प्रकार का शासक था?
5. नाटक के प्रमुख स्त्री पात्र कौन से हैं?

पाठ संख्या - 2.3 लेखक : श्री राजिन्द्र कुमार

ध्रुवस्वामिनी : तात्विक विवेचन

इकाई की रूपरेखा :

2.3.0 उद्देश्य
2.3.1 प्रस्तावना
2.3.2 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का तात्विक विवेचन
2.3.2.1 वस्तु
2.3.2.2 पात्र
2.3.2.3 कथोपकथन
2.3.2.4 देशकाल
2.3.2.5 उद्देश्य
2.3.2.6 शिल्प शैली
2.3.3 सारांश
2.3.4 शब्दावली
2.3.5 बोध प्रश्न

2.3.0 उद्देश्य :

इस पाठ में 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का तात्विक विवेचन किया जाएगा। सामान्यतः नाटक का प्रमुख तत्व उसकी वस्तु या कथानक होता है। पात्र, उनके कथोपकथन आदि से नाटक की कथावस्तु विकसित होती है और प्रत्येक नाटक का उद्देश्य अवश्य होता है। शिल्प तथा शैली भी नाटक के महत्वपूर्ण तत्व माने जाते हैं।

2.3.1 प्रस्तावना :

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक एक सफल रचना है। यह प्रसाद का अंतिम नाटक माना है। इसमें प्रसाद की नाटयकला का सुंदर रूप मिलता है। किसी भी रचना को समझने के लिए उसके तात्विक विश्लेषण का अध्ययन आवश्यक होता है। कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन (संवाद) देश काल, उद्देश्य के साथ–साथ अभिनय की दृष्टि से नाटक का विश्लेषण महत्वपूर्ण होता है। इस पाठ में इस नाटक का तात्विक विवेचन करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास है कि यह एक सफल नाटक है।

2.3.2 ध्रुवस्वामिनी नाटक का तात्विक विवेचन :

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का आलोचनात्मक अध्ययन करने से पूर्व हमें नाटक के सामान्य तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। सामान्यतः जो रचना रंगमंच पर अभिनय के लिए लिखी जाती है, उसे 'नाटक' कहते हैं। वैसे नाटक के भी अनेक भेद किए गए हैं किन्तु इनका विशेष महत्व नहीं है। नाटक के तत्वों के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों ने विस्तार से लिखा है। भारतीय आचार्यों के अनुसार नाटक के मुख्यतः पाँच तत्व होते हैं – (1) वस्तु (2) पात्र (3) रस (4) अभिनय और (5) वृत्ति। पाश्चात्य विद्वानों ने पाँच के स्थान पर छह तत्व माने हैं – (1) वस्तु (2) पात्र (3) कथोपकथन (4) देशकाल (5) उद्देश्य और (6) शिल्प शैली।

आधुनिक युग में पाश्चात्य तत्वों का ही प्रचलन अधिक है, अंतः यहां ध्रुवस्वामिनी का इन्हीं नाटकीय तत्वों की कसौटी पर मूल्यांकन करेंगे।

2.3.2.1 वस्तु :

1. नाटक के संदर्भ में वस्तु का अर्थ है 'कथावस्तु' या 'कहानी' जिसके आधार पर नाटक का निर्माण होता है। नाटक में एक से अधिक कथाओं का भी समावेश किया जा सकता है जिसमें से प्रमुख कथा को 'अधिकारिक' या 'प्रमुख' कहते हैं जबकि गौण को प्रसंगिक कहा जाता है। ध्रुवस्वामिनी में तीन कथाओं या कथानकों का मेल है। (1) ध्रुवस्वामिनी एवं रामगुप्त ने सम्बन्धित कथानक (2) रामगुप्त एवं शकराज से सम्बन्धित (3) शकराज और रामगुप्त एवं ध्रुवस्वामिनी पति–पत्नी होते हुए भी एक दूसरे से प्रेम नहीं करते। एक और रामगुप्त को ध्रुवस्वामिनी पर सन्देह है कि यह चन्द्रगुप्त को चाहती है तो दूसरी ओर ध्रुवस्वामिनी को शिकायत है कि उसे रामगुप्त का मधुर संभाषण तक सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। दोनों के बीच की दूरी क्रमशः बढ़ती जाती है जबकि परिस्थितियों के कारण चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के और निकट आ जाता है। जहां रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को शत्रु की सेवा में सौंप देने का निर्णय कर लेता है, वहां चन्द्रगुप्त उसकी रक्षा अपने प्राणों पर खेलकर करता है। अन्त में रामगुप्त का वध हो जाता है और ध्रुवस्वामिनी को पत्नी रूप में स्वीकार लेता है। इस प्रकार नाटक का प्रमुख कथानक यही है जिसका अन्त ध्रुवस्वामिनी की इच्छा के अनुसार होता है। शास्त्रीय शब्दावली में उसे 'अधिकाधिक' कथा कहा जा सकता है।

दूसरे कथानक का सम्बन्ध रामगुप्त एवं शकराज के दूव्दू से है। वस्तुतः शकराज ने सन्धि के रूप में ध्रुवस्वामिनी की मांग कर के सारी कथा को अत्यन्त गम्भीर रूप दे दिया है। शकराज को ध्रुवस्वामिनी अर्पित करके रामगुप्त एक साथ दो संकटों से मुक्ति पा जायेगा। एक ओर वह घर में शान्ति स्थापित कर सकेगा तो दूसरी ओर वह शत्रु से भी मित्रता स्थापित कर सकेगा इस प्रकार का चिन्तन स्वयं रामगुप्त करता है। किन्तु चन्द्रगुप्त इनके विपरीत ध्रुवस्वामिनी की रक्षा करके ही अपने दोनों लक्ष्यों की पूर्ति करता है – ध्रुवस्वामिनी को मुक्त करवाना एवं राजगद्दी प्राप्त करना। इस दृष्टि से यह कथानक गौण होते हुए भी प्रमुख कथानक की उपेक्षा अधिक प्रभावशाली है तथा सारे नाटक में आकर्षण का केन्द्र भी यहीं बन जाता है। 'नाट्यशास्त्रीय' शब्दावली में इसे 'पताका' कह सकते हैं – 'पताका' प्रारम्भ से लेकर अन्त तक चलने वाली गौण कथा या सहकथा होती है।

तीसरा कथानक शकराज और कोमा के प्रणय से सम्बन्धित है। यद्यपि ये दोनों प्रारम्भ में प्रेम करते हैं किन्तु ध्रुवस्वामिनी के प्रति आकर्षण और उसकी प्राप्ति की आशा से शकराज अपना दृष्टिकोण बदल लेता है। जिसके परिणामस्वरूप दोनों का प्रणय–सूत्र टूट जाता है। फिर भी कोमा शकराज के वध के अनन्तर उसका शव प्राप्त करती है तथा इसी प्रयास में वह मारी जाती है। यह कथानक सर्वथा गौण है जिसे शास्त्रीय शब्दावली में 'प्रकरी' कहा जा सकता है।

जहां प्रथम और द्वितीय कथानक एक दूसरे से भली भान्ति गुंथे हुए हैं तथा एक–दूसरे को आगे बढ़ाने में योग देते हैं, वहां तीसरा कथानक इतना गौण है कि यदि इसे नाटक में से निकाल भी दिया जाये तो मूल कथावस्तु को कोई हानि नहीं होगी। पर फिर भी इसका महत्व अवश्य है। वह इस दृष्टि से है कि सच्ची प्रेमिका कोमा के प्रणय को ठुकरा कर शकराज पाठकों और दर्शकों की दृष्टि में इतना गिर जाता है कि उसका चन्द्रगुप्त द्वारा छलपूर्वक वध करना ही अनुचित प्रतीत नहीं होता। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि ध्रुवस्वामिनी के प्रति भी उसकी लालसा शुद्ध प्रेम से प्रेरित नहीं थी, केवल वासना ही उसके भूल में थी। अतः ऐसे व्यक्ति को छलपूर्वक मार देना भी अन्याय नहीं है।

अतः हम कह सकते हैं कि इस नाटक के तीनों ही कथानक परस्पर सुगंठित एवं महत्वपूर्ण हैं। इसमें सारी कथावस्तु बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ती है तथा पाठक या दर्शक की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। साथ ही इसमें कहीं भी कोई घटना ऐसी नहीं है कि जो अस्वाभाविक प्रतीत हो। नाटक की कहानी से सुसम्बद्धता, स्वाभाविकता और रोचकता ये गुण आवश्यक माने गए हैं, जो ध्रुवस्वामिनी में भी मिलते हैं। अतः कथावस्तु की दृष्टि से नाटक सफल एवं उच्चकोटि का सिद्ध होता है।

2.3.2.2 पात्र :

पात्रों की दृष्टि से विचार करते हुए सर्वप्रथम इस बात का निर्णय करना है कि इस नाटक का नायक या सर्वप्रमुख पात्र कौन है? इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम हमारा ध्यान ध्रुवस्वामिनी की ओर जाता है। ध्रुवस्वामिनी का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली है कि उसे अनेक आलोचकों ने नाटक की नायिका या प्रमुख पात्र माना है। इसमें सन्देह नहीं कि सारे नाटक में वहीं आकर्षण की केन्द्र है। रामगुप्त की चिन्ता का कारण वही है, तो शकराज भी उसी के लिए लालायित है। साथ ही चन्द्रगुप्त भी उसी की प्रेरणा से प्रेरित है। नाटक का नामकरण भी उसी के आधार पर हुआ है। इन सब बातों के होते हुए भी हम ध्रुवस्वामिनी की अपेक्षा चन्द्रगुप्त को ही नाटक के नायक का पद देना उचित समझते हैं। एक तो चन्द्रगुप्त अपने साहसपूर्ण कार्य द्वारा सभी पात्रों की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक पात्र है। वही सारी समस्याओं का समाधान करता है – ध्रुवस्वामिनी की रक्षा एवं शकराज का वध भी उसी के द्वारा होता है। अन्त में ध्रुवस्वामिनी एवं राज्य दोनों की प्राप्ति भी उसी को होती है। अवश्य ही ध्रुवस्वामिनी का व्यक्तित्व प्रेरणादायक है पर कर्मठता चन्द्रगुप्त से ही मिलती है। नाटक में प्रेरणा से अधिक महत्व कर्मठता का होता है – अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस नाटक के नायक पद का अधिकारी चन्द्रगुप्त है।

चरित्र–चित्रण की दृष्टि से इस नायक के प्रभावशाली पात्रों में चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी तथा कोमा का नाम उल्लेखनीय है। जैसा कि पीछे स्पष्ट किया गया है, चन्द्रगुप्त इस नाटक का नायक ही नहीं सबसे अधिक प्रभावशाली पुरुष पात्र है। (लेखक ने इसके व्यक्तित्व एवं चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए सभी प्रयास किए हैं।) यद्यपि ध्रुवस्वामिनी के मन में उसके प्रति आकर्षण प्रथम दर्शन से ही उत्पन्न हो चुका था तथा इसका संकेत भी वह प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में ही देती है फिर भी उसके मन में किसी प्रकार का कुत्सित भाव उत्पन्न नहीं होता। आरम्भ में वह अपने बड़े भाई और उसकी पत्नी–ध्रुवस्वामिनी दोनों को सम्मान की दृष्टि से देखता है। कुल मर्यादा की रक्षा के लिए ही वह ध्रुवस्वामिनी के सतीत्व एवं राज्य की प्रतिष्ठा को बचाने का प्रयास करता है। किन्तु रामगुप्त का दुर्व्यवहार एवं उसका नीचतापूर्ण कार्य ही उसे विद्रोह के लिए प्रेरित करता है। परिस्थितियों से वशीभूत होकर ही वह ध्रुवस्वामिनी एवं राजगद्दी दोनों को स्वीकार करता है। रामगुप्त का वध भी वह स्वयं नहीं करता, अपितु उसके एक सामन्त के द्वारा होता है और वह भी चन्द्रगुप्त की प्रेरणा से नहीं अपितु चन्द्रगुप्त की रक्षा के लिए होता है। अतः प्रत्येक दृष्टि से वह एक निष्कलंक व्यक्ति सिद्ध होता है, पर वह चतुर, साहसी वीर एवं बुद्धिमान् भी है – अपनी चतुरता, साहस एवं बुद्धि के बल पर ही शकराज का नाश करके गुप्त साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बचाता है। इस प्रकार एक उच्च श्रेणी के पुरुष पात्र के सभी गुण चन्द्रगुप्त में विद्यमान हैं।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की सबसे सुन्दर एवं मधुर पात्र ध्रुवस्वामिनी है। उसका व्यक्तित्व प्रसाद की कोमल कल्पनाओं एवं मधुर भावनाओं से निर्मित है। उसके सौन्दर्य में एक अपूर्व आभा है तो उसकी वाणी में अद्भुत तेज़ है। वह स्वयं कुछ अधिक न करती हुई दूसरों को बहुत कुछ करने की प्रेरणा देने में सक्षम है। विभिन्न अवसरों पर उसके द्वारा कहे गए शब्द अमर वाक्य हैं। जब शिखिर स्वामी अपना निर्णय देते हुए

ध्रुवस्वामिनी को शकराज के हाथों में सौंप देने का अनुमोदन करता है तो उसकी प्रशंसा करते हुए रामगुप्त उसे बृहस्पति की उपाधि से विभूषित करते हैं। इस अवसर पर वह व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहती है – अमात्य तुम बृहस्पति हो, चाहे शुक्र, किन्तु धूर्त होने से ही क्या मनुष्य भूल नहीं कर सकता। आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र को पहचानने में तुमने भूल तो नहीं की? सिंहासन पर भ्रम से किसी दूसरे को तो नहीं बिठा दिया। इन शब्दों से उसकी निडरता एवं तेजस्विता का पता चलता है। इसी प्रकार वह रामगुप्त के निर्णय का विरोध करती हुई स्पष्ट शब्दों में कहती है, ''पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु–सम्पति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चलेगा। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते।''

अन्त में जब रामगुप्त उसे शकराज के पास चले जाने का आदेश दे देता है तो वहां भी अपनी दृढ़ता का परिचय देते हुए कहती है – ''नहीं मैं अपनी रक्षा स्वयं करूंगी। मैं उपहार में देने की वस्तु शीतलमणि नहीं हूँ। मुझसे रक्त की तरल–लालिमा है। मेरा हृदय ऊष्ण है और इसमें सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूंगी।''

अस्तु, जहां ध्रुवस्वामिनी कोमल, मधुर, सुन्दर है वहाँ आत्म सम्मान की भावना से प्रेरित कठोरता एवं दृढ़ता का भी अभाव उसमें नहीं है। कोमलता और कठोरता का अद्‌भुत सम्मिश्रण है।

ध्रुवस्वामिनी के विषय में कुछ आलोचक आक्षेप कर सकते हैं कि उसने रामगुप्त की उपेक्षा करके उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त से प्रेम करके उचित नहीं किया। किन्तु उसके लिए वह दोषी नहीं है। रामगुप्त का व्यवहार एवं कार्य ही दोषी है। रामगुप्त का व्यवहार प्रारम्भ से ही उसके प्रति उपेक्षणीय था। इससे अधिक रामगुप्त का चारित्रिक पतन क्या हो सकता था कि कठिनाईयों के समय पत्नी की रक्षा करने के स्थान पर शकराज जैसे दुष्ट भेड़िये को सौंप दिया। ऐसी स्थिति में उसने जो कुछ किया वह स्वाभाविक था।

अन्य नारी पात्रों में कोमा और मन्दाकिनी का चरित्र भी सुन्दर रूप में चित्रित किया गया है। कोमा एक आदर्श प्रेमिका है। इसलिए वह यह सहन नहीं कर पाती कि उसका प्रेमी शकराज किसी अन्य नारी ध्रुवस्वामिनी को ग्रहण करे। साथ ही उसमें सच्चरित्रता, सत्यपरायणता एवं स्पष्टवादिता के भी गुण हैं। इसलिए शकराज के कार्य की निन्दा करती हुई वह स्पष्ट शब्दों में पूछती है – ''मेरे राजा, आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन करा कर अपने गर्व की तृप्ति के लिए कैसा अनर्थ कर रहे हो। जब इसके उतर में शकराज कहता है कि वह मेरी राजनीति का प्रतिशोध है'' तो वह तर्क करती है – ''किन्तु राजनीति का प्रतिशोध क्या एक नारी को कुचले बिना नहीं हो सकता?''

इस प्रकार उसका प्रणय गम्भीर है, परन्तु फिर भी वह सत्य और न्याय से भरे जाने को प्रस्तुत नहीं है। शकराज के इसी अन्यायपूर्ण कार्य से खिन्न होकर वह उसका परित्याग कर देती है। किन्तु उसकी मृत्यु के अनन्तर उसका शव प्राप्त करने के लिए वह शत्रु के सामने याचना करती है और शव को ले जाती हुई ही मारी जाती है। शकराज के प्रति उसका प्रेम सच्चा था, इसका ज्वलन्त प्रमाण उसका आत्मबलिदान है।

मन्दाकिनी रामगुप्त और चन्द्रगुप्त की बहिन है। उसका व्यक्तित्व ध्रुवस्वामिनी से मिलता जुलता है। जहाँ एक ओर वह कोमल, भाव–प्रवण एवं सुन्दर है, वहीं दूसरी ओर सत्य और न्याय की रक्षा के लिए क्रूर तथा कठोर भी होना जानती है। वह अपने मधुर गीतों एवं प्रभावशाली संवादों द्वारा पुरुष पात्रों को प्रेरणा देती हुई उन्हें सत्य पथ पर अग्रसर करती है। जब शकराज के प्रस्ताव के सम्बन्ध में रामगुप्त एवं उसका मन्त्री अपनी विवशता प्रदर्शित करते हैं तथा ध्रुवस्वामिनी आत्महत्या कर लेने की घोषणा करती है, तो वहां मन्दाकिनी अपने उत्साहवर्धक शब्दों के द्वारा मार्ग खोजने व आगे बढ़ने का संदेश देती हुई कहती है – अमात्य

आत्महत्या के लिए प्रस्तुत हो फिर चिक क्यों? एक बार अन्तिम परीक्षा करके देखो। बचोगे तो राष्ट्र और सम्मान भी बचेगा नहीं तो सर्वनाश?

इसी प्रकार अन्त में भी अपनी निर्भयता एवं न्याय बुद्धि का परिचय देती हुई कहती है – ''तुम लोगों की यदि कुछ भी बुद्धि होती तो इस अपनी कुल–मर्यादा रूपी नारी की शत्रु दुर्ग में न भेजते। ....इस परिषद से मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड़कर जिन लोगों ने राज कलुषित किया हो, उन्हें दण्ड मिलना चाहिए – मैं तुम लोगों को नीच गाथा सुन रही हूँ। तुम्हारी प्रवचनाओं ने जिस नरक की सृष्टि की है उसका अन्त समीप है। कहीं धर्म शास्त्र हो तो उसका मुंह खुलना चाहिए।

कहना न होगा कि इस प्रकार नाटककार ने ध्रुवस्वामिनी, कोमा एवं मन्दाकिनी – इन तीनों नारी पात्रों के व्यक्तित्व में महानता का संचार करके अप्रत्यक्ष में अपनी उसी उक्ति का कि ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो'' को अनुमोदन किया है।

नाटक के दुष्ट पात्रों में रामगुप्त एवं शकराज का नाम उल्लेखनीय हैं। रामगुप्त तो प्रत्येक दृष्टि से नीच एवं पतित दिखाया गया है। वह विलासी है, इसलिए सदा से घिरा रहता है। ध्रुवस्वामिनी पर अकारण ही प्रारम्भ से ही शंका करता है। उसका शंकालु स्वभाव चन्द्रगुप्त की सत्य परायणता पर विश्वास नहीं करता। कायरता एवं क्लीवता उसमें चरम सीमा तक है। शत्रु के जंघन्य प्रस्ताव को स्वीकार करता हुआ वह अपने कुल एवं राष्ट्र की मान मर्यादा ध्रुवस्वामिनी को भी सौंप देने का निर्णय कर लेता है। सौंदर्यलिप्सा एवं कामुकता उसमें बहुत अधिक है। इसलिए वह ध्रुवस्वामिनी के रूप सौन्दर्य के प्रति मुग्ध है पर उसे भोगने की क्षमता उसमें नहीं है। परिस्थितियों के अनुसार व्यवहार करना भी वह नहीं जानता। चन्द्रगुप्त जबकि अपने साहसपूर्ण कार्य द्वारा सबकी आंखों का तारा बना हुआ है, वह उस पर आक्रमण करने की मूर्खता करता है जिस कारण मर जाता है। निर्दयता, क्रूरता एवं नृशंसता भी उसमें है। जिसका प्रमाण है, बेचारे निर्दोष मिहिरदेव एवं उनकी पुत्री कोमा को शकराज का शव ले जाते हुए मरवा देना। अतः कहना चाहिए कि ऐसा कोई दुर्गुण नहीं है, जिससे रामगुप्त बचा हो। कदाचित् नाटककार ने, चन्द्रगुप्त एवं ध्रुवस्वामिनी के चरित्र को निर्दोष, निष्कलंक एवं ऊँचा सिद्ध करने के लिए रामगुप्त के चरित्र को बहुत अधिक गिरा दिया है। जो कलात्मक दृष्टि से उचित नहीं होता।

शकराज रसिक एवं विलासी है। इसीलिए वह पुष्प के समान सुकुमार प्रेयसी कोमा को निराश करके उस ध्रुवस्वामिनी को पाने के प्रयास करता है जो उसके प्राणों के लिए त्रिशूल सिद्ध होती हैं। फिर भी रामगुप्त की तुलना में वह ऊँचा दिखाई पड़ता है। काम के समय वीरता, साहस एवं कर्मठता का उसमें अभाव नहीं है। उसके विचार भाग्यवादी नहीं कर्मवादी है। इसीलिए वह कहता है – सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं। मैं तो पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता हूँ। पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है।

अपने पराजित शत्रु से धन–दौलत या भूमि की मांग कर सकता था किन्तु शत्रुओं की पत्नियों की मांग करना उसका सर्वथा अनुचित प्रस्ताव था, जिसका समर्थन न राजनीति के आधार पर किया जा सकता है और न ही नैतिकता एवं सदाचार की दृष्टि से। ऐसी अनुचित एवं अविवेकपूर्ण मांग रखकर ही उसने अपनी मृत्यु स्वयं बुलवा ली। इसीलिए उसके पतन से निश्चित ही पाठकों एवं दर्शकों को प्रसन्नता होती है।

शिखर स्वामी जहां एक स्वार्थी, कपटी, अविवेकी एवं अन्यायी मन्त्री का उदाहरण प्रस्तुत करता है वहाँ राज्य पुरोहित एक विवेकशील, न्यायी एवं आदर्शवादी ब्राह्मण का आदर्श प्रस्तुत करता है। एक परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है तो दूसरा सत्य और न्याय के लिए प्राणों का भी त्याग करने को तैयार रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक में पात्रों का चरित्र–चित्रण आदर्शमूलक रूप में हुआ है। अर्थात् जो पात्र अच्छे हैं, वे प्रारम्भ से अन्त तक अच्छे हैं तथा सभी गुण उनमें मिलते हैं। जबकि बुरे पात्र प्रारम्भ से अन्त तक बुरे रहते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि इसमें चरित्र–चित्रण स्थिर एवं गतिशून्य है। उसमें परिवर्तन या विकास नहीं दिखाया गया है। एक छोटे से नाटक में इसके लिए अधिक अवसर भी नहीं होता। फिर भी समय रूप में इसके पात्र प्रभावशाली एवं सजीव प्रतीत होते हैं।

2.3.2.3 कथोपकथन :

नाटक का तीसरा तत्व कथोपकथन या संवाद अथवा वार्तालाप है। नाटक में पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप और संभाषणों के द्वारा ही उसकी कथावस्तु एवं चरित्र–चित्रण को प्रस्तुत किया जाता है। अतः इनका नाटक में होना आवश्यक है किन्तु साथ ही सम्भाषण पात्रों के अनुकूल, परिस्थितियों के अनुसार संक्षिप्त, रोचक एवं प्रभावशाली होने चाहिए। प्रसाद के अन्य नाटकों पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि उनमें सम्भाषण लम्बे–लम्बे हैं तथा उनकी भाषा किलष्ट एवं गूढ़ है। यह आक्षेप ध्रुवस्वामिनी पर लागू नहीं होता। इसमें सर्वत्र संक्षिप्त एवं रोचक संवाद ही प्रस्तुत किए गए हैं जो कहीं–कहीं तो बहुत ही मार्मिक बन गए हैं जैसे –

'विचित्र हो या सचित्र, अमात्य तुम्हारी राजनीतिज्ञता इसी में है कि भीतर और बाहर से सब शत्रु एक ही चाल में परास्त हो। तो चलो।'

''सच है वीरता जब भागती है तब उसके पैरों से राजनीतिज्ञता छल–छन्द की धूल उड़ती है–''.. .... ''किन्तु राजनीति का प्रतिशोध क्या एक नारी को कुचले बिना नहीं हो सकता है।''

''राजनीति ही मनुष्य के लिए सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ धो न बैठो, जिसका विश्व–मानव के साथ व्यापक सम्बन्ध है।'' – मिहिरदेव।

विभिन्न पात्रों के संभाषणों से उद्धृत उपर्युक्त उक्तियां इस बात का प्रमाण हैं कि नाटक में संभाषणों का प्रयोग कितने संक्षिप्त, सुन्दर प्रभावपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक रूप में हुआ है। वह जहां परिस्थितियों के अनुसार है वहां पात्रों के व्यक्तित्व को प्रकट करने में भी सहायक है। साथ ही उसमें ऐसे विचार भी आ गये हैं, जो अमर वाक्य कहे जा सकते हैं।

2.3.2.4 देशकाल :

नाटक का चौथा तत्व देश–काल माना जाता है। देश–काल से अभिप्राय यह है कि नाटक की विषय–वस्तु का जिस देश और जिस काल से सम्बन्ध हो, उसमें सारी बातें उसी के अनुसार होनी चाहिए। साथ ही उसमें सारा वातावरण भी देशकाल के अनुसार होना चाहिए। इस नाटक में देश–काल का चित्रण बहुत अधिक तो नहीं हुआ पर जितना हुआ है, वह उपयुक्त है। 'अमात्य', 'प्रतिहारी', 'पारिचालिका' जैसे शब्दों का प्रयोग गुप्तकालीन युग के अनुसार हुआ है। राजमहल की व्यवस्था उस युग में किस प्रकार की होती थी इसका निर्देश उसमें हुआ है। पुरुषों की विलासिता एवं नारी की सबलता का भी चित्रण युगानुसार हुआ है। राजपुरोहित का प्रभाव एवं विवाह आदि में सम्मति का महत्त्व भी गुप्तकाल के अनुरूप है। विवाह मोक्ष, एवं पुनर्विवाह का विधान भी उस काल की प्रथाओं के अनुरूप हैं। अतः यह कहना चाहिए कि नाटककार ने देश–काल का परिस्थितियों एवं वातावरण का ध्यान रखकर ही तदनुरूप नाटक में उनका चित्रण किया है।

2.3.2.5 उद्देश्य :

नाटककार किसी विशेष भाव–विचार या समस्या के चित्रण को लक्ष्य करके नाटक लिखता है, जिसे नाटक लिखने का उद्देश्य माना जाता है। प्रश्न है, ध्रुवस्वामिनी में लेखक का क्या उद्देश्य है? हमारे

विचार में उसका प्रमुख उद्देश्य इतिहास की एक धुंधली घटना को तथा उसके पात्रों को प्रदीप्त करना है। ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त को अब तक जिस कलंक से कलंकित किया जा रहा था। उस कलंक से उन्हें मुक्ति दिलाकर लेखक ने सिद्ध किया है कि परिस्थिति विशेष में नारी का पुनर्विवाह भी उचित है। ध्रुवस्वामिनी के गौरव को उज्जवल रूप में अंकित करके लेखक ने भारतीय समाज के लिए एक प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। मध्ययुग में अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों से ग्रस्त होकर विधवा होकर एवं नारी के पुनर्विवाह की प्रथा बन्द हो गयी थी तथा उसके स्थान पर पर्दा एवं सती प्रथा जैसी दूषित रीतियां चल पड़ी थी। नाटककार प्रसाद ने इस रचना के माध्यम से नारी के व्यक्तित्व की महानता, उसकी स्वतन्त्रता एवं प्रगतिशीलता का आदर्श प्रस्तुत किया है। निश्चित ही नाटककार अपने उद्देश्य से सफल हुआ है।

2.3.2.6 शिल्प शैली :

नाटक में शिल्प पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है एक तो रंगमंचीय शिल्प की दृष्टि से तथा दूसरा शैली की दृष्टि से। रंगमंचीय शिल्प की दृष्टि से नाटक की कहानी इतनी लम्बी न हो कि उसे मंच पर प्रस्तुत करना कठिन हो जाये और न ही उसमें ऐसी घटनायें होनी चाहिए कि जिसका अभिनय कठिन हो। उसके संभाषण भी दर्शकों की समझ में आने वाले होने चाहिए। अंकों आदि का विभाजन भी ठीक होना चाहिए। ध्रुवस्वामिनी इन सभी दृष्टियों से सुन्दर नाटक है। सारा नाटक केवल तीन अंकों में प्रस्तुत किया गया है तथा दृश्य भी अधिक नहीं हैं। ऐसी घटनाओं को जिन्हें मंच पर प्रस्तुत करना कठिन होता है। सावधानी से टाल दिया गया है, उनकी केवल सूचना ही दी गई है।

शैली या भाषा शैली की दृष्टि से भी नाटक सुन्दर है। उसमें संस्कृत की शब्दावली का प्रयोग किया गया है पर फिर भी वह कठिन नहीं है। गीतों का भी प्रयोग स्थान–स्थान पर किया गया है किन्तु वे छोटे–छोटे एवं प्रभावशाली हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्रुवस्वामिनी नाटक सभी तत्वों से एक सफल नाटक है। यह प्रसाद का अन्तिम नाटक माना जाता है अतः इससे प्रसाद की नाट्यकला का निखरा हुआ, अन्तिम प्रौढ़ रूप दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक ही है। उनके अन्य नाटक रंगमंच की दृष्टि से असफल माने जाते हैं किन्तु ध्रुवस्वामिनी इसका अपवाद है।

2.3.3 सारांश :

इस पाठ में 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के तत्वों पर विचार किया गया है। नाटक की सफलता इन्हीं तत्वों के समुचित आयोजन पर निर्भर करती है। प्रसाद की नाट्यकला अद्भुत है। इसीलिए उनके सभी नाटक अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं रूचिपूर्ण हैं।

2.3.4 शब्दावली :

वस्तु	–	नाटक की कथा
संभाषण	–	संवाद
कथोपकथन	–	संवाद
प्रणय	–	प्रेम संबंध
कुत्सित	–	बुरा
समिश्रण	–	मेल
प्रतिशोध	–	बदला
प्रदीप करना	–	मुख्य रूप से उभारना

2.3.5 बोध प्रश्न :

1. 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की कथा में किसका प्रेम–प्रसंग मिलता है?
2. इस नाटक की प्रमुख नायिका कौन सी है?
3. नाटक का प्रधान नायक कौन सा है?
4. नाटक में किस देश काल का वर्णन है?
5. ध्रुवस्वामिनी तथा रामगुप्त का सम्बन्ध–विच्छेद क्यों हुआ?

पाठ संख्या– 2.4
डॉ0 कुलदीप कौर

ध्रुवस्वामिनी का चरित्र चित्रण और समस्याएँ

वैदिक काल से ही नारी को समाज में प्रतिष्ठित स्थान मिला है किन्तु मध्ययुगीन संस्कृति ने नारी के अस्तित्व को मिटा कर उसे उपभोग्या मात्र बना दिया । वैदिक युग को परम्परा के अनुसार प्रसाद ने भी नारी की सत्ता को स्वीकार किया । वास्तव में प्रसाद जैसे भावुक तथा आदर्शवादी कलाकार के मन में नारी के प्रति आस्था, अथाह श्रद्धा व सहानुभूति है। उनकी यह मान्यता हैं कि इस पृथ्वी पर जितने भी श्रेष्ठ-गुण , भाव या मूल्य हैं, वे केवल नारी के कारण ही टिके हुए हैं। इन्ही मान्यताओं के साथ वे, नारी को उसका प्राप्य दिलाने के लिए अपनी सृष्टि में अग्रसर हुए हैं। नारी –जीवन के सब पक्षों व स्तरों का पूरी सूक्ष्म दृष्टि व उच्चाशयता के साथ निरीक्षण- परीक्षण किया है। नारी के जितने भी रूप कल्पित किए जा सकते है, उन सबका वर्णन प्रसाद ने नारी के आदर्श और यथार्थ दोनों रूपों में अपनी परिपूर्णता में प्रस्तुत किया है। नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण में प्रसाद के ह्रदय को सारी कोमलता, कल्पना, भावना और कला प्रस्फुटित हुई है।

प्रसाद ने नारी को गरिमामय दृष्टि से देखा है, उसके भीतर आशा, विश्वास, क्षमा, श्रद्धा, कल्याण- भावना, त्याग-संकल्प, एवं मानवता के दर्शन किए है। तभी तो आधुनिक युग में प्रसाद ने उस नारी को श्रद्धा कि संज्ञा देते हुए पीयूषस्त्रोतस्विनी कहा है- नारी, तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजत- नग पगतल में, पीयूष-स्त्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।

प्रसाद ने नारी को कोमलता का प्रतीक कहा है। प्रसाद ने नारी का आदर्शवादी स्वरूप चित्रित किया है। सत्पथ पर स्वभावतः चलने वाली कुछ नारियां परिस्थितिवश दिग्भ्रांत व स्खलित भले ही कहीं हो गई हों, पर सभी आदर्श नारियां अपने जीवन का अद्यतन निर्वाह करती हैं। सभी स्खलनशील विपथगामनियों को प्रसाद अन्त में उच्च नारीत्व के पथ पर ले आते हैं। उनके विचार में नारी सर्वमंगल, कल्याणी, शक्ति, मानव की जननी, धात्री, प्रथम अध्यापिका व समाह का आधार-स्तम्भ हैं। प्रसाद ने अपने इस मूल विचार को पोषित प्रचारित करने के लिए उन्होनें विभिन्न आयु, पद सामाजिक स्थिति व वर्ग की स्त्रियों को कला की पद्धति से, विभिन्न साहित्य –रूपों मे चित्रित किया है। डॉ. रामेश्वर खण्डेलवाल लिखते हैं कि प्रसाद के नारी सम्बन्धी विचारों के कलेवर की विशालता को देखकर कहा जा सकता है कि प्रसाद प्रताडित, बन्दी व विवश नारी के सच्चे , मुक्ताकामी, ज्ञाता, दृष्टि दायिनी व मित्र थे उन्होनें नारी की आत्मा में उतर कर उसका नीरव क्रन्दन बहुत ध्यान से सुना है और उसके उध्दार के लिए कृतसंकल्प है।

प्रसाद–साहित्य में अनेक नारी पात्र मिलते हैं। आदर्श-निष्ठ स्त्री पात्रों में देवसेना, श्रध्दावासवी , मल्लिका, जयमाला, राज्यश्री , कार्नेलिया, यमुना, तितली, शैली, इरावती, प्रेमा, सुनीता,

मन्दाकिनी, कोमा, रामा, अलका आदि अनेक पात्र अपना गरिमामय अस्तित्व रखते है। देवसेना राष्ट्र के लिए स्वयं को समर्पित कर देती है और अपने आदर्श प्रणय का बलिदान भी। देवसेना में अपूर्व साहस का संचय था- वह श्मशान में विजया के साथ चली जाती है। आदर्श –प्रणयिनी तरह अपनी अन्तवेदिना को व्यक्त कर उसी में ही सन्तुष्टि का अनुभव करती है। 'कामायनी' की श्रद्धा पुरूष के समक्ष समर्पित है और आकांक्षाहीन नव-सृष्टि के विकास के लिए संकल्पशील दिखाई देती है। अपने मनु को असद् मार्ग से हटाकर सद्-वृत्ति की और अग्रसर करती है। वासवी पति-परायणा, स्नेह और वात्सल्य की प्रतिमा है। मल्लिका के चरित्र में राग-विराग तथा ईर्ष्या-द्वेष से ऊपर उठा हुआ मानवतावादी रूप है। जयमाला अपने पति को सहर्ष रण में भेज कर अपूर्व धैर्य एवं कर्त्तव्य का परिचय देती है। अपने पैतृक राज्य का राष्ट्र के लिए उत्सर्ग कर देना सहज नहीं है। अपने पति की मृत्यु के साथ स्वयं भी सती हो जाती है। राज्यश्री का अपूर्व परित्याग, उदारता और विश्वबन्धुत्व तथा क्षमाशील का परिचायक है। यमुना विसंगतियों के साथ जीवन जीते हुए भी स्वाभिमान को नहीं झुकाती। तितली दुःखमय दिनों में स्वाभिमान के साथ जीकर सिध्द कर देती है कि नारी कमजोर नहीं है, वह पुरूष की तरह स्वावलम्बन पूर्ण जीवन जीने की क्षमता रखती है। इरावती की सत्य के प्रतिद्दढ़ता प्रशंसनीय है। प्रेमा की करूणा और सहानुभूति की भावना मानवीयता को एक नई दिशा में अग्रसर करने में समर्थ है। शैला यद्यपि विदेशी युवती है किन्तु फिर भी भारतीय –संस्कृति के प्रति असीम आस्था रखती हुई परोपकार तथा मानव-सेवा में संलग्न रहती है। अलका के चरित्र में देश-सेवा का अखण्ड व्रत रखने वाली नारी का रूप अभिव्यक्त है।

प्रसाद के स्त्री-पात्रों में अनन्तदेवी, छलना, सुवासिनी, सुरमा, जैसी स्त्रियों भी हैं जिनके हृदय में सौतिया डाह व ईर्ष्या तथा प्रतिशोधात्मक भावनाएं भरी हुई हैं, किन्तु ये सभी पात्र महत्वाकांक्षा के अन्धे वातावरण में जीते हुए भी अन्ततः आदर्शेंमुखोन्माद की और प्रवृत्त होते हैं। पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हुए अपने दुष्कृत्यों के लिए क्षमा-याचना करती दिखाई देती हैं। वास्तव में प्रसाद ने अपनी कृतियों में नारी –पात्रों का चित्रण विशेष मनोयोग से किया है।

'ध्रुवस्वामिनी' में नारी-पात्र :- 'राज्यश्री' नाटक के समान प्रसाद का यह नाटक भी नायिका-प्रधान है। 'ध्रुवस्वामिनी में तीन नारी पात्र हैं। जिनमें से ध्रुवस्वामिनी और कोमा प्रधान पात्र है। 'मन्दाकिनी' के सम्बन्ध में प्रसाद ने कोई विशेष उल्लेख नहीं किया। उसका तो परिचय तक ज्ञात नहीं है। एक स्थान पर जब मन्दाकिनी ध्रुवस्वामिनी को भाभी कहकर पुकारती है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि वह चन्द्रगुप्त अथवा रामगुप्त की बहन है। नारी की विवशता और दुर्दशा पर आँसू बहाने वाली मन्दाकिनी का जीवन एक मात्र न्याय का पक्ष ग्रहण करने के लिए है। वह नेतृत्व करती है, नारी को मुक्ति दिलाने में। कोमा प्रेम में द्दढ़ता से निमग्न, अत्यन्त भावुक नारी के रूप में हमारे समक्ष आती है और अपने ह्रदय को नियन्त्रित करने में असमर्थ हुई शकराज के शव के लिए ध्रुवस्वामिनी से याचना करती है। प्रसाद ने कोमा के चरित्र में प्रणय और त्याग का अपूर्व संयोग दिखाया है। इस नाटक में चित्रित नारी-पात्रों में ध्रुवस्वामिनी ही एक ऐसा पात्र है जिसका नाटक की समस्त घटनाओं से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समबन्ध है। यद्यपि ध्रुवस्वामिनी और कोमा दोनों के जीवन में ऐसी घटनाएं घटी हैं जिनके मूल में पुरूष की स्वार्थपरता है, उसका दंभ है,

उसकी राजनीति है, और उसका विलास है। "अतंर इतना है कि ध्रुवस्वामिनी का नारीत्व जहाँ अंततः संघर्ष के लिए जाग्रत हो जाता है, वहाँ कोमा निश्चेष्ट भाव से सारा तिरस्कार चुपचाप सहन कर लेती है। वस्तुतः दोनों रूढ़िग्रस्त समाज-व्यवस्था के शिकार हैं। चुपचाप अपनी बलि देने वाली कोमा इस सत्य को पुष्ट करती है कि अधिकार के प्रति उदासीन और तिरस्कार के विरूद्ध निष्क्रिय समर्पण नारी के विनाश का कारण बनता है। दूसरी और मुक्ति के लिए जागरूक नारी अपना प्राप्य प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार ध्रुवस्वामिनी के तीनों पात्रों में से ध्रुवस्वामिनी का विशेष महत्व है।

ध्रुवस्वामिनी का चरित्र-चित्रण - जैसा कि ऊपर स्प्ष्ट किया जा चुका है कि 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में ध्रुवस्वामिनी का चरित्र ही प्रधान है। उसका चरित्र नाटक के अन्य पात्रों पर प्रभाव डालता है। समस्त घटनाओं और व्यापारों का मूल उसी से सम्बन्धित है। इसी संदर्भ में डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का कथन है, कि " सारे कार्य –व्यापारों के मूल से उसी का सम्बन्ध है और प्रधान मूल की उपभोक्त्री भी वही है। ऐसी अवस्था में अन्य सभी पात्र उसके व्यक्तित्व को भली भाँति समझने में सहायता देने वाले हैं। रामगुप्त का चरित्र उसके पत्नीत्व और नारीत्व के यथार्थ रूप को पूर्णतया जगाने में सहायता करता है। चन्द्रगुप्त एवं मन्दाकिनी के संपर्क से उसका प्रेमिका-स्वरूप स्प्ष्ट हो उठता है। शकराज उद्दीपन का काम करता है। इसी प्रकार सभी अन्य पात्र उसके चरित्र की विभिन्न वृत्तियों के आलम्बन और उद्दीपन की तरह चारों और घूमते दिखाई पड़ते है। यही कारण है कि नाटक की अधिकांश घटनाएँ ध्रुवस्वामिनी के जीवन का प्रत्याक्षीकरण कराती हैं और चरित्र-विकास का क्रम स्वाभाविक व मनोवैज्ञानिक पध्दति पर है और उसमें कार्य- व्यापार की भी अधिकता है।

ध्रुवस्वामिनी की चरित्रगत विशिष्टताएं इस प्रकार हैं –

1. **असहाय और दुर्बल नारी :-**

   नाटक के प्रारम्भ में ध्रुवस्वामिनी ऐसी नारी के रूप में सामने आती है जो प्रभुत्व की साकार कठोरता में सीधे तने हुए उन्मुक्त अभ्रभेदी शिखर के आगे क्षुद्र कोमल-निरीह लताओं की उसके चरणों में लौटने की बाध्यता को अनुभव करती है और इस अपमान और यन्त्रणा को जैसे अपने जीवन का सत्य स्वीकार कर लेती है क्योंकि 'राजचक्र सब को पीसता है, पिसने दो; हम दुर्बलों और निस्सहायों को पिसने दो।' वल्लरी की भांति पहाडी पर चढ़ जाना उसके लिए बहुत दूर की बात यहाँ तक कि जब रामगुप्त उसे शकराज के पास भेजने का प्रस्ताव करता है तो उसका अहंकार भी चूर्ण हो जाता है और वह रक्षा करने के लिए कहती है। इतना ही नहीं वह उसके विलास की सहचारी बनने को भी उद्यत हो उठती है। इस प्रकार कुल मिला कर ध्रुवस्वामिनी का चरित्र का यह पक्ष असहाय और दुर्बल है।

2. **मर्यादाशील**

   मर्यादा का विचार प्रायः ध्रुवस्वामिनी के प्रत्येक कार्य-व्यापार से लक्षित होता है। अपने पिता द्वारा जब समुद्रगुप्त की विजय के उपलक्ष्य में वह गुप्तकाल की वधू के रूप में

उपहार स्वरूप दी गई, तब अपने पिता का सम्मान रखने हेतु उसने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया और वह चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता थी,किन्तु नियति ने उसे क्लीव रामगुप्त के हाथों में समर्पित कर दिया, इस पर भी कुल-मर्यादा की रक्षा हेतु चुप्पी साधे रही। जब रामगुप्त ने उसे शकराज के लिए संधि-प्रस्ताव के अनुरूप उपहार स्वरूप देना स्वीकार किया तो वह अपनी स्त्रीत्व की मर्यादा को बचाए रखने के लिए प्रयत्नशील हो उठी। ध्रुवस्वामिनी ने विवशता भरा जीवन जिया परन्तु आत्म-मर्यादा पर आँच नहीं आने दी।

3. अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित

स्त्री होने के कारण ध्रुवस्वामिनी के अन्तर्मन में हीनता-ग्रन्थि का जन्म होता है। अपनी विवशता व अपने अपमान का कारण वह स्त्री होना समझती है। उसके व्यक्तित्व के अन्तर्द्वन्द्व का कारण हीनता ग्रन्थि तथा दमित वासना है। रामगुप्त की परिणीता हो जाने पर चन्द्रगुप्त के प्रति अंकुरित होने वाले प्रेम को अन्तर्मन में दबा देती है; दूसरी और अपने पति रामगुप्त से उपेक्षित होने के कारण उसके प्रति मन में घृणा व वितृष्णा के भाव हैं। चेतनमन रामगुप्त की पत्नी होना स्वीकार करता है किन्तु अचेतन इसका विरोध कर चन्द्रगुप्त का लैंगिक आकर्षण प्राप्त करना चाहता है। भावनाओं का यह द्वन्द्व अवसर पा कर प्रकार हो जाता है,....कुमार तुमने वही किया, जिससे मैं बचती रही। तुम्हारे उपकारों और स्नेह की वर्षा से मैं भीगी जा रही हूँ। ओह, (हृदय पर उँगली रखकर) इस वक्षस्थल में भी दो हृदय हैं क्या? जब अन्तरंग 'हाँ' करना चाहता है, तब ऊपरी मन ना क्यों कह देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्रुवस्वामिनी अन्तर्द्वन्द्व से पड़ित है।

4. सौन्दर्यशालिनी

ध्रुवस्वामिनी अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी है। उसके रूप का आलोक अत्यधिक तीव्र है। उसके रूप का दर्शन कर रामगुप्त प्रथम दृष्टि में ही स्तम्भित रह जाता है – '(उसे देखता हुआ) तुम सुन्दर हो, ओह! कितनी सुन्दर....' अतः निश्चित है, कि ध्रुवस्वामिनी के रूप पर रामगुप्त मुग्ध है, किन्तु क्लीव और डरपोक होने के कारण उसकी रक्षा का वचन नहीं देना चाहता है। चन्द्रगुप्त भी उसके सौन्दर्य से आकर्षित है, जिसका निदर्शन उसके इन विचारों से हो गया है'..... 'मेरे हृदय के अंधकार में प्रथम किरण सी आकर,जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया था, उसको भी मैंने केवल इसलिए भूलने का प्रयत्न किया कि......' अपने शिविर में आई हुई ध्रुवस्वामिनी के इस सौन्दर्य को देखकर शकराज आश्चर्यचकित रह जाता है, और सोचने लगता है –मैं किसको रानी समझूँ? रूप का ऐसा तीव्र आलोक। नहीं , मैंने कभी नहीं देखा था। शकदुर्ग में जाते हुए चन्द्रगुप्त के ये शब्द ध्रुवस्वामिनी के अप्रतिम सौन्दर्य का संकेत देते हैं, " मेरे जीवन निशीथ का ध्रुव नक्षत्र इस घोर अंधकार में अपनी स्थिर उज्वलता से चमक रहा है।" अस्तु, ध्रुवस्वामिनी का यह रूप उसके व्यक्तित्व को आकर्षक व प्रभावशाली बनाता है। आवेश जन्य परिस्थितियां इस सौन्दर्य में अधिक निखार ला देती हैं।

5.**अनुरागिनी**

जगत् की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी होते हुए भी ध्रुवस्वामिनी 'शास्त्र की कील' द्वारा एक क्लीव पुरूष से बँधी है। उस पर शासन किसी और का है और वह अनुरागिनी किसी और की है। नाटक के प्रारम्भ में ही उसने यह स्वीकार कर लिया कि 'कुमार की स्निग्ध, सरल और सुन्दर मूर्ति को देख कर कोई भी प्रेम से पुलकित हो सकता है।

"वह पति राजाधिराज रामगुप्त के साथ रहकर भी प्रणय की भूखी है। प्यासी नदी की भाँति समुद्र के संगम के लिए छटपटा रही है। वह विवश है किसी अन्य पुरूष के प्रति आकर्षित होने के लिए।" चन्द्रगुप्त के साथ क्षणिक आलिंगन उसे आत्मतुष्टि प्रदान करता है अपने प्रेमी के साथ शकराज के दुर्ग में जाते हुए वह प्रेमजन्य असीम आनन्द का अनुभव करती है ... तो फिर क्यों न हो? हम दोनों ही चलेंगे। मृत्यु के गह्वर में प्रवेश करते समय भी एक विनोद प्रलय का परिहास देख सकूँगी। तुम्हारा वह ध्रुवस्वामिनी का वेश, ध्रुवस्वामिनी ही न देखें, तो किस काम का? (दोनो हाथों से चन्द्रगुप्त का चाबुक पकड़कर सकरूण देखती है। इस प्रकार संकटपूर्ण परिस्थितियों में प्रेमी का क्षणिक मिलन उसके नीरस जीवन में आशा का संचार करता है और अन्त में वह रामगुप्त का परित्याग कर चन्द्रगुप्त को वरण लेती है।

6. जागरूक

नाटक के प्रारम्भ में ध्रुवस्वामिनी यद्यपि एक दुर्बल और असहाय नारी के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई है परन्तु शकराज की मृत्युपरांत उसका नवीन रूप दृष्टिगोचर होता है। उसकी जाग्रत आत्मा स्वयं को उत्पीड़न से मुक्त मानती हुई अधिकार की देहली पर पैर रखती हुई दिखाई देती है। अब वह रामगुप्त की पत्नी होने से भी इन्कार कर देती है, क्योकि जो स्त्री शत्रु के पास उपहार स्वरूप भेज दी जाती है, उस पर पति को कोई अधिकार नहीं रह जाता। मन्दाकिनी के समक्ष वह महादेवी की पदवी से वंचित, और भाभी होना भी अस्वीकार करती है। विवाह को असमर्थता एवं विवशता जन्य बता देती है। यही पर उसका व्यक्तित्व एक सशक्त और जागृत महिला के रूप में उभरा है, जिसमें विवशता का कहीं भी संकेत नहीं है। वह पुरोहित, शिखरस्वामी, रामगुप्त, परिषद, सभी से तर्क वितर्क करती है और सभी को अपने तर्कों से पराजित करती है. अपने अधिकारों की मांग वह जिस रूप में करती है, वह अत्यन्त साहसपूर्ण है।

7. भावुक और रहस्यवादी

ध्रुवस्वामिनी एक भावुक और रहस्यवादी नारी है। रामगुप्त का यह कथन उसके इस व्यक्तित्व का परिचायक है- 'जो स्त्री दूसरे के शासन में रहकर प्रेम किसी अन्य व्यक्ति से करती हो, उसमें एक गम्भीर और व्यापक रस उद्वेलित होता रहता होगा।' उसका भावुकता पूर्व व्यक्तित्व उसके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है- 'कितना अनुभुतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंगन! कितने संतोस से भरा था। नियति ने अज्ञात भाव से मानो लू से तपी

हुई वसुधा को क्षितिज के निर्जन से सायं कालीन शीतल आकाश में मिला दिया हो।' रामगुप्त व शिखरस्वामी की बातों के आन्तरिक अर्थों पर ही उसका ध्यान अधिक है। उसके कार्यों की विचित्रता वास्ताव में रामगुप्त को उसके प्रति शंकाशील बना देती है। सबके समक्ष अकस्मात् चन्द्रगुप्त को अपनी भुजाओं में पकड़ लेना और इस प्रकार कहना "नहीं, मैं तुमको जाने न दूँगी। मेरे क्षुद्र दुर्बल नारी जीवन का सम्मान बचाने के लिए इतने बड़े बलिदान की आवश्यकता नहीं," जबकि दो क्षण पूर्व वह अत्यन्त विनयशील होकर रामगुप्त से अपने पत्नी अधिकारों की माँग करती है और अपने आत्म- सम्मान की रक्षा के लिए प्रार्थना कर रही होती है।

8. **विद्रोहिणी**

जैसे कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि 'नाटक के प्रारम्भ में ध्रुवस्वामिनी के चरित्र का कमज़ोर पक्ष हमारे सामने उभर कर आया है, किन्तु धीरे-धीरे उसमें एक विद्रोही स्वर पनपने लगता है। उसका यह विद्रोही रूप अचानक ही दृष्टिगोचर नहीं होता। शुरू में तो वह एक बन्दिनी के समान जीवनयापन व्यतीत करती हुई दिखाई देती है, जिसकी इच्छा-अनिच्छा का कोई महत्त्व नहीं। महादेवी होते हुए भी वह महादेवी के अधिकारों से वंचित है। लेकिन यही प्रताड़ना जब अपने चरम- बिन्दु पर पहुँच जाती है, अर्थात् जब रामगुप्त उसको शकराज को उपहार-स्वरूप देने के लिए उद्यत हो जाता है, तो ही उसका विद्रोही रूप हमारे समक्ष आता है। हरिहर प्रसाद गुप्त भी लिखते है, "प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी, आत्ममर्यादा की भीख के ठुकराए जाने पर काली का उग्र रूप धारण करती है और तदनन्तर वह मर्यादा विनय और लज्जा की दुहाई देने वाले पुरूष के प्रति विद्रोह कर बैठती है।"

अपने इस नवीन स्वरूप में ध्रुवस्वामिनी अपने वैवाहिक जीवन की कथा मार्मिक शब्दों में राजपुरोहित के समक्ष व्यक्त करती हुई कहती है, इतना बड़ा उपहास- धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की यह पैशाचिक परीक्षा मुझसे बलपूर्वक ली गई है। पुरोहित ! तुमने जो मेरा राक्षस-विवाह कराया है, उसका उत्सव भी कितना सुन्दर है। यह जन-संहार देखो, अभी तक उस प्रकोष्ठ में रक्त से सनी हुई शकराज की लोथ पड़ी होगी। कितने ही सैनिक दम तोड़ते होंगे और इस रक्तधारा में तिरती हुई मैं राक्षसी-सी साँस ले रही हूँ।"

रामगुप्त द्वारा ध्रुवस्वामिनी को जब महादेवी कहकर पुकारा जाता है तब वह बड़े व्यंग्य से अपने विद्रोह को इन शब्दों के माध्यम से व्यक्त करती है, कौन महादेवी ! राजा, क्या अब भी मैं महादेवी ही हूँ? जो शकराज की शय्या के क्रीतदासी की तरह भेजी गई हूँ वह भी महदेवी ! आश्चर्य! ध्रुवस्वामिनी का उक्त रूप तब और प्रखर हो उठता है जब वह अपने प्रति किए गए अन्यायों का प्रतिकार करने के लिए अपने लिए सभी और से अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने के साथ ही रामगुप्त व शिखरस्वामी की उपस्थिति में चन्द्रगुप्त को अन्यायपूर्ण राजकीय आदेशों का प्रबल प्रतिवाद करने के लिए प्रोत्साहित अत्यन्त

उत्तेजनापूर्ण व उतसाहवर्धक शब्दों में कहती है –"कुमार ! मैं कहती हूँ कि तुम प्रतिवाद करो.. तुम्हारी जिह्वा पर कोई अपराध नहीं किया। ..झटका दो इन लौह –श्रृंखलाओं को। यह मिथ्या ढ़ोंग कोई नहीं सहेगा। तुम्हारा क्रुद्ध दुर्दैव भी नहीं।" वह शिखर स्वामी की भर्त्सना करती हुई उसे प्रवंचना का पुतला तक कह देती है। वह रामगुप्त से भी निर्भीकता से पूछती है कि क्या वह वास्तव में उसकी सहधर्मिणी ही है। अंततोगत्वा उसे रामगुप्त से मोक्ष प्राप्त हो जाता है और चन्द्रगुप्त से विवाह कर वह सही अर्थों में राजमहिषी हो जाती है।

'ध्रुवस्वामिनी का विद्रोह नए विचारों पर उतना निर्भर नहीं जितना शास्त्रीय मान्यताओं की नयी व्याख्या पर इतना तो निश्चित ही है कि ध्रुवस्वामिनी ने समाज द्वारा मान्य संस्कारों को तोड़ कर युगानुरूप नए आदर्शों की सृष्टि की। वैवाहिक जीवन के लिए नए आयाम खोलने का सामार्थ्य उसके व्यक्तित्व में विद्यमान हैं।

ध्रुवस्वामिनी में समस्याएं

शंका या अनिश्चितता की स्थिति को समस्या कहते है। इसमें कोई संदेह नहीं कि समस्या नाटकों का जन्म पाश्चात्य नाटकों में हुआ, मगर इसका परम शिखर भारतीय नाटकों में मिलता है। प्रसाद के नाटक भारतीय इतिहास के उस अध्याय को लेकर चले है, जो अपनी सर्वतोमुखी सपन्नता के कारण स्वर्ण युग कहलाता है। कवि या साहित्य, बुद्धि व भावना को दृष्टि से अपने युग का आदर्श पुरूष समझा जाता है अतः यह स्वाभाविक ही है कि समाज की विषम स्थितियों में जनता उसकी और देखे और वह अपनी बुद्धि के बल से अपने युग की समस्याओं के समाधान के लिए उत्साह से आगे बढ़े और पुरातन परम्पराओं और रुढ़ियों को त्याग कर 'नवीनता' को स्थापित करे।

ध्रुवस्वामिनी में समस्याएं :- ध्रुवस्वामिनी नाटक की कथा का केन्द्र बिन्दु नारी समस्या है। यद्यपि नाटककार नाटक के प्रारम्भ से अन्त तक पूरे नाटक में कहीं भी स्पष्ट रूप से यह नहीं कहता कि वह नारी समस्या को लेकर चल रहा है; परन्तु फिर भी आरम्भ से अन्त तक ध्रुवस्वामिनी की समस्या पूरे नाटक में घटनाओं को जन्म देती हुई कथा को आगे बढ़ाती है और समस्याओं के समाधान के साथ ही नाटक का अन्त हो जाता है। प्रसाद ने इस नाटक में समस्या का समावेश बड़े कौशल के साथ किया है। नारी समस्या नाटक की संपूर्ण चेतना में आरम्भ से अंत तक छाई रहती है। ध्रुवस्वामिनी के व्यक्तिगत जीवन की समस्याएं, समाजिक जीवन की समस्याएं बन जाती है।

ध्रुवस्वामिनी की प्रधान समाजिक समस्याएं :- ध्रुवस्वामिनी में नारी समस्या ही प्रधान समस्या है। नारी समस्या सर्वकालिक और सार्वभौमिक समस्या है। इस नाटक की नायिका ध्रुवस्वामिनी के जीवन में अनेक प्रकार की आपत्तियां आती है। जिनके थपेडो से जूझती हुई वह आगे बढ़ती है। नाटक के आरम्भ से ही वह बडी दुःखी, और अंतर्द्वन्द्वों मे उलझी हुई दिखाई पडती है। नाटक की घटनाओं से पता चलता है कि क्षोभ, चिन्ता और व्याकुलता का कारण उसका पति राम गुप्त है जो क्लीब (नपुंसक है)। उससे कभी बात तक नहीं करता। ध्रुवस्वामिनी की व्याकुलता के कारण लेखक को प्रकृति के उपकरणों में भी व्याकुलता नज़र आती है यथा-"(सामने पर्वत की ओर देख

कर) सीधा तना हुआ अपने प्रभुत्व की सकार कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुक्त शिखर और कोमल निरीह लताओं और पौधो को इसके चरण में लौटना ही चाहिए न ।" रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी की उपेक्षा इसलिए करता है क्योंकि ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है। ध्रुवस्वामिनी पुराने संस्कारों और नवीन विचारों के पाट में जीवन भर पिसती रहती है। शकराज की मृत्यु के बाद वह चन्द्रगुप्त के समीप आकर कहती है- "क्या वह मेरी भूल न थी – जब मुझे निर्वासित किया गया, तब मैं आत्म-मर्यादा के लिये कितनी तड़प रही थी और राजाधिराज रामगुप्त के चरणों में रक्षा के लिये गिरी, पर कोई उपाय चला? नहीं। पुरुषों की प्रभुता का जाल निर्दिष्ट पथ पर ले ही आया।"

ध्रुवस्वामिनी की स्थिति सतरंज के मोहरे के समान है जिसका जब जी चाहता है दांव पर लगा देता है। ध्रुवस्वामिनी की त्रासदी है कि उसे तीन बार उपहार के रूप में सौंपा जाता है। पहली बार उसके पिता समुद्रगुप्त को उपहार के रूप में देता है और समुद्रगुप्त राजाधिराज की वाग्दत्ता पत्नी बना देता है। दूसरा समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद रामगुप्त राजाधिराज बन जाता है और ध्रुवस्वामिनी से बलात् विवाह कर लेता है। तीसरी बार जब रामगुप्त शकराज की सेनाओं से चारों तरफ से घिर जाता है और शकराज संधि में ध्रुवस्वामिनी की मांग करता है। रामगुप्त राजनीतिक समस्या के लिये ध्रुवस्वामिनी को देने के लिये सहमत हो जाता है और पति धर्म से विमुख होकर कहता है – "तुम मेरी रानी? नहीं - नहीं – तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं किसी दूसरे को देना चाहता हूँ।" इस मूल समस्या के साथ ही अन्य सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं वह इस प्रकार है –

नारी अधिकार की समस्या :- नारी अधिकार की समस्या को ध्रुवस्वामिनी में उठाया गया है। ध्रुवस्वामिनी के रूप में नारी, पुरूषों के अत्याचारो और शोषण का शिकार बनी हुई सामने आती है। आज वह अपने अधिकारों को पाने के लिये जागरूक है। उसमें शाश्वत नारी की तरह कोमलता और भावुकता ही नहीं, बुद्धि भी है। जब रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को शकराज को देने के लिये कहता है; तब ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त की पत्नी और गुप्त साम्राज्य की सामग्री होने के कारण रामगुप्त से अपनी रक्षा और पत्नी अधिकारों की मांग करती हुई कहती है – "मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं? कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरूष, उसके लिये प्राणों का प्रण लगा सकें.... मैं गुप्त कुल वधु होकर इस राज परिवार में आई हूँ। इसी विश्वास पर मेरी रक्षा करो, आज में शरण की प्रार्थिनी हूँ।"[1] ध्रुवस्वामिनी अपने अधिकारों की मांग विनम्रता पुर्वक करती है। मंदाकिनी भी ध्रुवस्वामिनी के समान नारी के अधिकारों का समर्थन करती है। वह स्त्री के अधिकारों को छीनने का विरोध करती हुई इसे अधर्म बताती है। मंदाकिनी के यह शब्द उस प्रगतिशील वर्ग की नारी के शब्द हैं –" जिन स्त्रियों को धर्मबंधन में बाँध कर, उनकी सम्मति के बिना, आप उनका सब अधिकार छीन लेते है, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार – कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते। जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति का अवलम्ब मांग सकें।" मंदाकिनी स्त्री के दमित जीवन का विरोध और अधिकारो का समर्थन करती है।

नारी प्रेम की समस्या :- ध्रुवस्वामिनी के सभी नारी पात्र प्रेम की समस्या से पीडित हैं। इस नाटक की नायिका ध्रुवस्वामिनी का विवाह रामगुप्त से हो जाता है जबकि वह प्रेम चन्द्रगुप से करती है। रामगुप्त, ध्रुवस्वामिनी को बंदियों की तरह रखता है क्योंकि वह चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है। वह ध्रुवस्वामिनी से बलात् विवाह करके उसके प्रेम में बाधा डालता है और कहता है – " ध्रुवदेवी से कह देना चाहिये कि वह मुझे और मुझसे ही प्यार करे। "कोमा का जीवन भी प्रेम वियोगिनी नारी के सद्दश है। कोमा ने शकराज से प्रेम किया है मगर शकराज उसकी अवहेलना करता रहता है, इस अवहेलना से दुखी होकर अपने ही हाथों सींचे हुये पौधे को कुचल देना चाहती है। वह अपने पिता से कहती है –" तोड़ डालू पिता जी ! मैंने जिसे अपने आँसूओ से सींचा , वही दुल्लारभरी वल्लर, मेरी आँख बंद कर चलने मे मेरे ही पैरों से उलझ गई है। दे दूँ एक झटका – उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जायें, और वह छिन्न होकर धूल में लोटने लगें?"

पुनर्विवाह कि समस्या :- विवाह स्त्री और पुरूष के सहयोग और अधिकार से सम्बन्धित है। जिसमें दोनो एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते है, एक दूसरे की कमियों को अपनाते है अगर ऐसा नहीं होता तो दाम्पत्य जीवन में जटिलतायें पैदा हो जाती है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए उमेश शास्त्री कहते हैं – " विवाह यदि पारस्परिक सहयोग भावना एवं अधिकार रक्षा का है तो इसके विपरीत अवस्था से इसे वैवाहिक संस्था का दूर जाना ही आवश्यक है. धर्म विवाह के बंधन को इतनी जटिलताएं प्रदान कर चुका है कि उनमें दाम्पत्य जीवन कुष्ठाग्रस्त होता जा रहा है।"[2] ध्रुवस्वामिनी में भी ऐसी ही स्थितियाँ पैदा होती है जिनसे दाम्पत्य जीवन में जटिलताएँ पैदा हो जाती है। वह अपने पैशाचिक विवाह से त्रस्त है। वह पुरोहित द्वारा लिये गये इस विवाह को अभिशाप मानती है। पुरोहित भी उस विवाह को सफल समझता है जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे पर विश्वास करते हो। ध्रुवस्वामिनी अपने क्लीब, नपुंसक पति रामगुप्त से मोक्ष पाना चाहती है।

राजनीतिक समस्या

नारी समस्या के बाद ध्रुवस्वामिनी में राजनीतिक समस्या आती है। इस राजनैतिक समस्या के दो रूप है, पहला यह कि क्या राजा को इस बात का अधिकार प्राप्त है कि वह पारस्परिक नियमों का पालन करके नई व्यवस्था की घोषणा कर सके? दूसरा यह कि यदि राजा दुर्बल, अशक्त, अयोग्य और अत्याचारी हो तो क्या उसे पदच्युत कर किसी योग्य व्यक्ति को राजा बनाया जा सकता है? यहाँ हम इन दोनो प्रश्नों की समस्याओं पर विचार करेगें। राजाओं के समय यह प्रथा थी कि राजा के मरने के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र को ही राज सिंहासन प्राप्त हो सकता है। परन्तु समुद्रगुप्त ने इस परम्परा का उल्लंघन किया और राजगद्दी अपने छोटे पुत्र चन्द्रगुप्त को दी क्योंकि वह एक योग्य, वीर और शक्तिशाली पुरूष था जबकि रामगुप्त एक अयोग्य, विलासी और दुर्बुद्धि का मालिक था। इसी बात को पुष्ट करते हुए जगन्नाथ प्रसाद कहते है – "यदि राजा दुर्बल अक्षम और अत्याचारी हो तो राज्य के कल्याण के विचार से उसके स्थान पर योग्य व्यक्ति की स्थापना का भार सदैव प्रजा और प्रजा के प्रतिनिधियों पर होना चाहिए।" चन्द्रगुप्त को गद्दि देना एक प्रकार का रूढ़ परम्परा

का उल्लंघन था। समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद रामगुप्त ने इस रूढ़ परम्परा के प्रश्न को उठा कर राजगद्दी पर अधिकार कर लिया चन्द्रगुप्त योग्य और सहासी होते हुये भी विनयी स्वभाव का था इसीलिए वह बड़े भाई का विरोध करना उचित नही समझता और राजगद्दी छोड़ देता है।

राजनितिक समस्या का दूसरा रूप अयोग्य राजा की समस्या है। रामगुप्त एक अयोग्य, विलासी और अत्याचारी राजा है। राजगद्दी पर बैठते ही वह अपना असली रूप दिखाना शुरू कर देता है। वह सबसे पहले अपने छोटे भाई की वाग्दत्ता पत्नी के साथ बलात् विवाह कर लेता है फिर शिखरस्वामी के सहयोग से षड्यंत्र रच गुप्त वंश की 'महादेवी' और अन्य स्त्रियों के गौरव और सम्मान की परवाह किये बिना ही उन्हें अपने शत्रु शकराज को सौंप देता है।

समस्याओ का समाधान :- नारी समस्याओ का समाधान प्रसाद ने नारी विद्रोह द्वारा नहीं किया बल्कि इसके लिये उन्होंने सामाजिक और धार्मिक मान्याताओं का आदर करते हुये, पुरोहित के द्वारा ही शास्त्र सम्मत समाधान प्रस्तुत किया है ध्रुवस्वामिनी अपने पति से मोक्ष पाना चाहती है। इस समस्या का समाधान करते हुए पुरोहित कहता है कि अगर रामगुप्त अपनी पत्नी की मर्यादा की रक्षा नहीं कर पाता और दोनो में परस्पर सहयोग और विश्वास भी नहीं है। तो ऐसे विवाह को विवाह नहीं खेल ही माना जाएगा। अगर सभी बातें सत्य हैं तो उसे धर्मशास्त्र की व्याख्या दोबार करनी पडेगी। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नारी का भी अपना सम्मान होता है उसे पशुओं की तरह खरीदा और बेचा या उपहार में नहीं दिया जा सकता। दूसरी बात यह कि रामगुप्त विवाह के समय पत्नी की रक्षा करने की, की गई प्रतिज्ञा से मुकर जाता है अतः उसका पत्नी पर अधिकार समाप्त हो जाता है वह स्पष्ट कहता है - " मैंने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की होगी मैं तो उस दिन द्राक्षासव में डुबकियाँ लगा रहा था। पुरोहितों ने जाने क्या-क्या पढ़ा दिया होगा। उन सभी बातों का बोझ मेरे सिर पर कदापि नहीं।" अतं में पुरोहित रामगुप्त की तरफ से बताता हुआ कहता है। "आचरण में पतित और कर्मों में राजा क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं । ... जिसे अपनी स्त्री को दूसरे की अंकशयनी बनने के लिये भेजने मे कुछ संकोच नहीं, वह क्लीव नहीं तो और क्या है? मैं स्प्ष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता।" नारी पुनर्विवाह और विच्छेद संबन्धी समस्या का समाधान लेखक ने भारतीय आदर्शों के साथ किया है।

क्या राजा परम्परा को त्याग नई व्यवस्था की घोषणा कर सकता है? इस समस्या का समाधान प्रसाद ने रामगुप्त को गद्दी से हटाकर किया है। रामगुप्त को इसलिए राज गद्दी से वंचित किया जाता है क्योकि वह लोगों पर आत्याचार करता है राज्य की बहु-बेटियों की इज्ज़त की नीलामी करता है। इन्हीं सभी कारणों के करके लोग उसके विरोधी बन जाते है चन्द्रगुप्त भी अपने भाई का विरोध करता है जब वह ध्रुवस्वामिनी को शकराज के जहाँ भेजने का प्रस्ताव रखता है। चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के द्वारा दुर्ग विजय के पश्चात् कुमार सामंत का साहस बढ़ जाता है, वह ज्वालामुखी की तरह भड़क उठते है, जब रामगुप्त निरीह शकों का संहार कर देता और उसे क्लीव, हिंसक इत्यादि नामों से पुकारते हैं। एक सामंत कुमार रामगुप्त के मुहँ पर ही कहता है कि वह गुप्त कुल के गौरव को कलंक –कालिमा के सागर में डुबा रहा है। सामंत कुमार यह वाक्य

खुले विद्रोह का भी करता है। फिर सभी एक आवाज में रामगुप्त के विरुद्ध बोल उठते हैं और चन्द्रगुप्त को अपना राजा बना लेते है और रामगुप्त को पदच्युत कर देते हैं। अयोग्य राजा की समस्या हल हो जाती है और उसके स्थान पर योग्य, वीर, साहसी व्यक्ति को राजा बना दिया जाता है।

पाठ संख्या - **2.5** **लेखक : श्री राजिन्द्र कुमार**

सप्रसंग व्याख्या

इकाई की रूपरेखा :

2.5.0 उद्देश्य

2.5.1 प्रस्तावना

2.5.2 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में प्रमुख स्थलों की सप्रसंग व्याख्या

    2.5.2.1 गद्यांशों की व्याख्या

    2.5.2.2 गीतों की व्याख्या

2.5.3 सारांश

2.5.4 शब्दावली

2.5.5 बोध प्रश्न

2.5.0 उद्देश्य :

किसी भी रचना को भली–भांति समझने के लिए उसके मूल पाठ को पढ़ना जरूरी होता है। विद्यार्थी 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक को अवश्य पढ़ें, इसलिए पाठ्यक्रम में इसके स्थलों की सप्रसंग व्याख्या रखी गयी है। इस प्रकार व्याख्या भरने से नाटक का मूल भाव सहज ही समझ में आ जाता है। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप इस नाटक के प्रमुख गद्यांशों के अर्थ को समझ लेंगे। इस अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि –

* प्रसाद ने बड़ी सुन्दर भाषा में पात्रों के मनोभावों का चित्रण किया है,
* प्रसाद की भाषा पर काव्यात्मकता का प्रभाव है – क्योंकि व मूल रूप से एक कवि थे,
* प्रसाद की भाषा संस्कृत निष्ठ है जिसे अभ्यास द्वारा समझा जा सकता है।

2.5.1 प्रस्तावना :

इस पाठ में नाटक के प्रमुख गद्य–स्थलों की सप्रसंग व्याख्या करने का ढंग बताया गया है। इसे पढ़कर आप व्याख्या करने के सही ढंग से परिचित हो सकेंगे। व्याख्या करने से रचना का केन्द्रीय भाव भी सहज ही समझ आ जाता है।

2.5.2 ध्रुवस्वामिनी-सन्दर्भ सहित व्याख्या :

सप्रसंग व्याख्या : इस पाठ में नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में से कुछ आवश्यक स्थलों की सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। बहुत जरूरी है कि आप इस नाटक को मूल रूप से पढ़े ताकि आपको सप्रसंग व्याख्या करने में सुविधा रहे। इन व्याख्या स्थलों को ध्यानपूर्वक पढ़े और व्याख्या का ढंग सीखें।

2.5.2.1 गद्यांशों की व्याख्या :

सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की सकार कठोरता, अभ्रभेद उन्मुक्त शिखर। और इन क्षुद्र कोमल, निरीह लताओं और पौधों को इसके चरण से लौटना ही चाहिए।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक से ली गई हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी है, लेकिन चन्द्रगुप्त का बड़ा भाई रामगुप्त छल–बल से राज्य की प्राप्ति कर लेता

है और ध्रुवस्वामिनी से विवाह भी कर लेता है। वह क्लीव और कायर पुरुष है, उसके कठोर व्यवहार से ध्रुवस्वामिनी अपने को अपमानिक और अपेक्षित अनुभव करती है। रामगुप्त का शिविर पर्वतों के समीप है। वहीं ध्रुवस्वामिनी उन दूर तक फैली हुई ऊँची कठोर पहाड़ियों को देखकर ये शब्द कहती है कि –

व्याख्या :

सामने जो यह पर्वत का शिखर तना हुआ खड़ा है, वह प्रकट कर रहा है कि प्रभुत्व अथवा अधिकार को पाकर कठोरता आ जाती है। इसकी खुली हुई चोटियां आकाश को छू रही हैं, जो उसके प्रभुत्व को प्रकट करती हैं। उसके प्रभुत्व के नीचे फलने–फूलने वाली तुच्छ लताओं और पौधों को उसके चरणों में लौटना पड़ रहा है, क्योंकि दीन–हीनों के लिए इसके अतिरिक्त कोई और रास्ता नहीं। ध्रुवस्वामिनी के इस कथन से यह संकेत मिलता है कि रामगुप्त जैसे पुरुष अपने प्रभुत्व के पद में कठोर बनकर तने रहते हैं और निरीह दीन–हीन स्त्रियों को अपमानित और निरादित होकर उनकी शरण में रहना पड़ता है। यहां ध्रुवस्वामिनी ने निरीह लताओं और कोमल पौधों के द्वारा अपनी दयनीय अवस्था की सूक्ष्म व्यंजना की है।

2. वह निरभ्र प्राची की बाल अरुण आह राजचक्र सब को पीसता है, पीसने दो, हम निस्सहायों और दुर्बलों को पीसने दो।

प्रसंग :

रामगुप्त के शिविर में जब खड़गधारिणी ध्रुवस्वामिनी का ध्यान चन्द्रगुप्त की ओर आकर्षित करती है तो उसकी सोई स्मृतियां जाग उठती हैं। चन्द्रगुप्त और रामगुप्त के कुचक्रों और अत्याचारों का स्मरण करती हुई कहती है कि –

व्याख्या :

उसने चन्द्रगुप्त को देखा है जिसका मुख बादलों से रहित पूर्व दिशा के स्वच्छ आकाश में चमकने वाले प्रातः काल के सूर्य के समान तेजस्वी और स्निग्ध है। अभिप्राय है कि चन्द्रगुप्त बालअरुण के समाज तेजस्वी दीप्तमान और कमनीयकान्त कलेवर है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि रामगुप्त के राजनीतिक कुचक्रों में सबको पिसना पड़ रहा है। जिस तरह मैं (ध्रुवस्वामिनी) निस्सहाय और दुर्बल होकर उसके अत्याचारों में पिस रही हूँ शायद इसी तरह चन्द्रगुप्त भी पिस रहा है। ऐसा लगता है कि वह अपने को इस अत्याचार के सामने असमर्थ और असहाय अनुभव करता है।

3. यह बल्लरी जो झरने के समीप पहाड़ों पर चढ़ गई है, उसकी नन्हीं–नन्हीं पत्तियों को ध्यान से देखने पर आप समझ जाएगी कि वह काई की जाति की हैं। प्राणी की क्षमता बढ़ा लेने पर वहां काई की जाति की है। प्राणी की क्षमता बढ़ा लेने पर वहां काई जो बिछलन बनकर गिरा सकती थी, अब दूसरों के ऊपर चढ़ने का आवलम्बन बन गई है।

प्रसंग :

सामने झरने के पास की लता जो पहाड़ी पर चढ़ती हुई जा रही है, उसकी छोटी–छोटी पत्तियों को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कोई जाति की कोई लता है, वह काई जिसमें पहले शक्ति नहीं थी और स्वयं ही पहाड़ी पर से लुढ़क सकती थी। इसमें इतना सामर्थ्य नहीं था कि किसी को ऊपर चढ़ा सके। लेकिन अब इसमें इतना सामर्थ्य आ गया है कि अब स्वयं तो ऊपर चढ़ ही गयी है दूसरे भी इसका सहारा लेकर ऊपर चढ़ सकते हैं। वह ध्रुवस्वामिनी के अन्दर यह साहस पैदा करना चाहती है कि यदि तुम साहस और उत्साह से काम लो तो तुम स्वयं अपनी रक्षा कर भी सकती हो, दूसरे भी आपका सहारा लेकर ऊपर चढ़ सकते हैं अर्थात् चन्द्रगुप्त का भी उद्धार हो सकता है।

4. आह कितनी कठोरता है मनुष्य के हृदय में देवता को हटाकर राक्षस कहां से घुस आता है कुमार की स्निग्ध, सरल और सुन्दर मूर्ति को देखकर कोई भी प्रेम पुलकित हो सकता है किन्तु उन्हीं का भाई?

प्रसंग :

ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त की क्लीवता और कठोरता से बहुत दुःखी है लेकिन इसके विपरीत चन्द्रगुप्त के सौम्य रूप और सद्गुणों के कारण उसकी ओर आकर्षित है। वह चन्द्रगुप्त में दैवी गुणों को देखती है और रामगुप्त में राक्षस की कुरुपता को। यद्यपि वे दोनों भाई–भाई हैं फिर भी उनके चरित्र में कितना अन्तर है। उन दोनों के चरित्रों की तुलना करती हुई वह कहती है कि मनुष्य की प्रकृति में कैसे–कैसे विरोधी तत्व उपलब्ध होते हैं। एक मनुष्य अत्यन्त सत् और कोमल प्रवृति का होता है, तो दूसरा कठोर। मूलतः मनुष्य देवता के समान सतोगुणी और कोमल होता है। लेकिन कितना दुर्भाग्य है कि कभी–कभी उसके मन की सद्वृत्तियां लुप्त हो जाती हैं और उसके मन में राक्षसी भाव पैदा होने लगते हैं और वह क्रूर तथा अत्याचारी हो जाता है। रामगुप्त और चन्द्रगुप्त दोनों ही सहोदर हैं लेकिन दोनों की प्रकृति में कितना अन्तर है चन्द्रगुप्त के चरित्र में इतनी कोमलता और सरलता है कि उसके सुन्दर रूप को देखकर कोई भी उसके प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। किन्तु उसी का भाई रामगुप्त इतना कठोर, क्रूर और राक्षसी स्वभाव का है कि उससे विरक्ति होने लगी है।

5. भयानक समस्या है......................................छल छन्द की धूल उड़ती है।

प्रसंग :

शकराज रामगुप्त पर आक्रमण करता है। सन्धि की शर्तों में ध्रुवस्वामिनी की मांग करता है। इससे रामगुप्त को प्रसन्नता होती है। क्योंकि वह समझता है कि इससे उसके मन का कांटा भी निकल जायेगा और उसका राज्य भी बच जायेगा। वह अपनी बुद्धि पर फूल नहीं समाता। इसी पर शिखर स्वामी ये शब्द कह रहा है कि –

महाराज जब बादलों का समूह आकाश को घेर लेता है और चारों ओर अंधेरा छा जाता है बिजली का चमकना बहुत लाभदायक होता है क्योंकि उसी से रास्ता सूझ सकता है। इसी तरह आप भी विरोधी परिस्थितियों में घिरे हुए है। आपका भविष्य भी अनिश्चित हैं। ऐसी विषय परिस्थितियों में वृद्धि पथ–प्रदर्शन कर सकती है और हमें हर्ष है कि आपने अपनी बुद्धि से इन समस्याओं का हल खोज निकाला है।

6. पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी...मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊँगी।

प्रसंग :

जब रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को शकराज के पास भेजने का निश्चय कर लेता है तो ध्रुवस्वामिनी का नारीत्व जाग उठता है और स्वयं अपनी रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। इन पंक्तियों में पुरुष द्वारा नारी पर किए गए अत्याचारों का विरोध करती हुई कहती है :–

पुरुष युगों में स्त्रियों को उसी तरह अपनी सम्पत्ति समझता रहा है, जैसे पशुओं को, उन पर मनमाने अत्याचार करना। अब उसकी आदत सी बन गई है लेकिन मैं यह सहन नहीं कर सकती। नारी कुल मर्यादा और गौरव है। पुरुष होने के नाते कुल की मर्यादा और पत्नी के गौरव की रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। लेकिन यदि तुम इतने कायर और क्लीव हो कि तुम मेरी और अपने कुल की रक्षा नहीं कर सकते तो सन्धि की शर्तों में शकराज को मुझे सौंपने का भी तुम्हें अधिकार नहीं है। मुझ में इतना साहस और शक्ति है कि अब मैं स्वयं अपनी रक्षा करूँगी। यदि तुम समझते हो कि मेरे यहां रहने से तुम पर कोई विपत्ति आती है तो तुम्हें इस विपत्ति से बचाने के लिए मैं कहीं चली जाऊँगी।

7. मैं उपहार देने की वस्तु शीतल मणि नहीं हूँ, मुझ में रक्त की लालिमा है। मेरा हृदय ऊष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है, उसकी रक्षा मैं करूँगी।

प्रसंग :

रामगुप्त के यह कहने पर कि तुम उपहार की वस्तु हो और तुम्हें शकराज के पास जाना ही पड़ेगा, ध्रुवस्वामिनी उत्तेजित हो उठती है और उसे धिक्कारती हुई कहती है कि तुम मदिरापन करते–करते अपना स्वाभिमान खो बैठे, तुम्हारा रक्त पानी बन गया है अर्थात् आत्मसम्मान की भावना को खो दिया है। लेकिन मेरे अन्दर नारी का स्वाभिमान है और रक्त की लालिमा है। उपहार में दे दी जाने वाली शीतल मणियों की तरह जड़ वस्तु नहीं हूँ। बल्कि मेरे अन्दर एक सशक्त चेतना शक्ति है। मेरे हृदय में आत्म–सम्मान की ज्वाला धधक रही है। मेरे अन्दर इतनी शक्ति है कि अपने नारीत्व और सम्मान की रक्षा स्वयं कर सकूंगी।

8. यह तीखी छुरी इस अतृप्त हृदय में...............................क्या मेरा जीवन भी अपना नहीं है। (पृष्ठ 26)

प्रसंग :

निराश और असहाय ध्रुवस्वामिनी अपने आत्म सम्मान और नारीत्व की रक्षा के लिए कटार निकाल कर आत्महत्या करना चाहती है तभी चन्द्रगुप्त आकर उसे रोक देता है। वह रूक जाती है लेकिन हृदय में उठे हुए भीषण द्वन्द्व को वह इन शब्दों में प्रकट करती है –

व्याख्या :

जिस प्रकार एक विषैला कीड़ा अपने डंक से विकसित होते हुए पुष्प को नष्ट कर देता है उसी प्रकार मैं भी इस कटार से अपने जीवन का जो अभी यौवन के विकास को प्राप्त कर रहा है, समाप्त कर देना चाहती हूँ लेकिन ऐसा करने से मेरी बहुत सी अभिलाषाएं अतृप्त रह जाएंगी। इन अतृप्त अभिलाषाओं को लेकर भी मैं मरना नहीं चाहती। परन्तु इस तरह अपमानित और और निरस्कृत होकर जीना भी तो एक अभिशाप है। अब मुझे सुखी जीवन का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। मुझे अब दूसरों के ऊपर आश्रित होकर ही रहना पड़ेगा और जीवन भर इनके उपकार के भार को ढोती रहूंगी जो समझते हैं कि उनकी कृपा और सहायता से ही मेरा जीवन चल रहा है। अतः जीवित रहने में भी मेरी बड़ी दुर्दशा होगी। मुझे लगता है कि इस जीवन पर भी हमारा कोई अधिकार नहीं है, मैं चाह कर भी इससे छुटकारा नहीं पा सकती। सम्भवतः मुझे नियति के आदेश पर ही चलना पड़ेगा।

9. जीवन विश्व की सम्पत्ति है, प्रसाद से, क्षणिक आवेश से या दुख कठिनाईयों से उसे नष्ट करना ठीक तो नहीं।

प्रसंग :

आत्महत्या के लिए प्रस्तुत ध्रुवस्वामिनी को रोकता हुआ चन्द्रगुप्त कहता है कि –

व्याख्या :

मनुष्य का जीवन इस प्रकार व्यर्थ में नष्ट करने के लिए नहीं। इस जीवन पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। यह तो विश्व की सम्पत्ति है और इसलिए इसे नष्ट नहीं कर सकती। मनुष्य जीवन की सार्थकता इसमें है कि वह विश्व–मंगल में रत रहे। यह ठीक है कि मनुष्य बहुत दुःखी हो जाता है, लेकिन उन क्षणिक विपत्तियों से उत्तेजित होकर दुःख और आवेश में मूल्यवान जीवन को नष्ट करना उचित नहीं है।

10. अनार्य, निष्ठुर मुझे कलंक–कालिमा के कारगर...............................मेरा निर्लज्ज बढ़ाने के लिए तत्पर है।

प्रसंग :

रामगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी से विवाह अवश्य कर लिया था, लेकिन उसे यह संदेह सदा बना रहा कि ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त के प्रति अभी भी प्रेम है। इसीलिए वह ध्रुवस्वामिनी के चरित्र पर शंका करता है अपने चरित्र के सम्बन्ध में ऐसे अपमानजनक शब्दों को सुनकर ध्रुवस्वामिनी साहस के साथ उत्तर दे रही है कि

व्याख्या :

हे निष्ठुर जिस प्रकार किसी को कारागार में बन्द करके धुएं में दम घोंटकर मार दिया जाता है, उसी प्रकार तुम चाहते हो कि मेरे ऊपर कलंक लगाकर और इस प्रकार के कठोर शब्दों से मेरे हृदय पर चोट करके मुझे मार दिया जाये, लेकिन हे दुष्ट! तुम्हारी आशा कभी पूरी नहीं होगी, तुम्हारे अत्याचारों से विवश होकर मैं असहाय अनुभव कर रही थी। उस असहयावस्था में चन्द्रगुप्त को प्रेम मुझे अमृत के समान प्राप्त हुआ। तुम उसे निर्लज्जता का जीवन कहते हो, लेकिन चन्द्रगुप्त के प्रेम का अमृत पीकर मैं ऐसा जीवन जीने के लिए भी तैयार हूँ। तुम्हारे कटु वचनों का धुआं दम घोटकर अब तुझे मार नहीं सकता।

11. कितना अनुभूतिपूर्ण था वह क्षण का आलिंगन..................................विधाता के विधान में अपने लिए सुरक्षित करा लूंगी। (पृष्ठ 33)

प्रसंग :

चन्द्रगुप्त जब ध्रुवस्वामिनी को आत्महत्या करने से रोकता है तो ध्रुवस्वामिनी भावाकुल होकर चन्द्रगुप्त को बाहु–बन्धन में बांध लेती है। अब वह एकान्त में है और चन्द्रगुप्त के साथ आलिंगन के उन क्षणों की स्मृति उसके हृदय को उद्वेलित कर रही है। वह सोचती है कि –

व्याख्या :

चन्द्रगुप्त को एक क्षण के लिए तो अपने आलिंगन में बाधा था, लेकिन वह क्षण कितने सुख और संतोष से भरा हुआ था। यह नियति का ही विधान था कि अनजाने में ही वह उससे आलिंगन बद्ध हो गई और पीड़ा ताप से जलते हुए हृदय को ऐसी शीतलता प्राप्त हुई जैसे दिन भर की लू से तपी हुई पृथ्वी को क्षितिज के रूप में संध्या के शीतल आकाश का आलिंगन मिल जाने से प्राप्त होती है। उसका जीवन कल तक विवशता और निरीहता की श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ था। वह ऐसे प्रदेश में रह रही थी जहां प्राणों का संचार करने वाली वायु का अभाव हो और सांस लेना भी दुर्लभ हो। उसका यह असहाय जीवन उसके लिए ही भार हो गया था, लेकिन चन्द्रगुप्त का प्रेम पाकर वह फिर से जी उठी है। अब वह मरना नहीं चाहती और चन्द्रगुप्त के साहचर्य का आनन्द लेना चाहती है।

12. सब जैसे रक्त के प्यासे। प्राण लेने और देने में पागल। बसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उस स्पर्श से परिचित नहीं। ऐसा तो वास्तविक जीवन नहीं है।

प्रसंग :

कोमा शकराज को हृदय से प्रेम करती है। उसका हृदय कुसुम से भी कोमल है, लेकिन वह देखती है कि चारों ओर युद्ध का वातावरण है। सभी लोग एक–दूसरे के खून के प्यासे दिखाई देते हैं। उसका सुकुमार हृदय इस भीषण वातावरण से व्यथित हो उठता है, तब वह कहती है कि –

व्याख्या :

न जाने क्यों सभी एक–दूसरे के खून के प्यासे बने हुए हैं जैसे एक दूसरे के प्राण लेने के लिए पागल बने हुए हो। मनुष्य का जीवन तो प्रकृति में व्याप्त सुख का उपभोग करने के लिए है, न कि इस प्रकार दूसरों का खून पीने के लिए। लेकिन न जाने क्यों अपने चारों ओर फैले हुए प्राकृतिक सौन्दर्य और उसके सुख से अपरिचित हैं। बसन्त की मस्ती से भरी हुई और अलसाई हुई हवा उनके पास से निकल जाती है और उन्हें इसका पता भी नहीं चलता, जैसे उन्हें उसके स्पर्श का ज्ञान ही नहीं है। मनुष्य का वास्तविक जीवन इससे भिन्न है। वास्तविक मनुष्य वहीं है जो मनुष्य के लिए आत्मसमर्पण करने को तत्पर हो।

11. प्रश्न स्वयं किसी के सामने नहीं आते...........................उससे उदासीन न होना चाहिए महाराज।

प्रसंग :

शकराज सन्धि की शर्तों में ध्रुवस्वामिनी को मांग कर स्वयं अपने लिए एक समस्या खड़ी कर लेता

है और वह उससे चिन्तित भी है। तभी कोमा उसे कहती है कि

व्याख्या :

कई बार हमारे सामने कोई भी प्रश्न अथवा समस्या नहीं होती लेकिन मनुष्य अनेक समस्याओं और प्रश्नों की स्वयं ही इसलिए सृष्टि करता है कि वह उन्हें अपने जीवन के लिए उपयोगी समझता है। वह दूसरी बात है कि बहुधा उन समस्याओं के जाल में खुद ही बुरी तरह फंस जाता है। ठीक उसी तरह जैसे मकड़ी अपना जाल बुनती तो लटकने के लिए है लेकिन वह खुद ही उसमें फंस जाती है। मनुष्य भी अपने चारों ओर समस्याओं का जाल फैलाकर अपने जीवन को संघर्षपूर्ण बना लेता है। प्रारम्भिक आनन्द और उल्लास मनुष्य के आगे आने वाले जीवन के संघर्षों के लिए कल्याणमयी सिद्ध होता है। इसीलिए मनुष्य को चाहिए कि जीवन के संघर्षों में उलझ कर अपने प्रारम्भिक प्रेम और उल्लास को न भूले। कोमा यहां कहना चाहती है कि यद्यपि शकराज के सामने कई समस्याएं हैं तथापि कोमा का पवित्र प्रेम उसके लिए कल्याणकारी ही होगा। इसलिए उसे कोमा की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

14. प्रताड़ना में बड़ा मोह होता है। उसे छोड़ने को मन नहीं करता। छल का बहिरंग सुन्दर होता है। विनीत और आकर्षक भी........................इस बन्धन को तोड़ डालो।

प्रसंग :

कोमा शकराज के आचार्य मिहिरदेव की पन्तिता पुत्री है। वह हृदय से शकराज से प्रेम करती है। लेकिन शकराज ध्रुवस्वामिनी को पाने की लालसा में उसकी उपेक्षा करता है जिससे उसका कोमल हृदय टूट जाता है। तभी मिहिरदेव उसे सांत्वना देता हुआ कहता है कि बेटही वंचना में ठगी में मनुष्य को बड़ा मोह होता है। मनुष्य का मन उसे छोड़ना नहीं चाहता। छल ऊपर से बहुत विनम्र और आकर्षक भी लगता है, बहुत सुन्दर लगता है, लेकिन उसका परिणाम ऐसा दुखदायी होता है कि हृदय को बेध देता है। तुम्हारे साथ भी ऐसा छल हुआ? शकराज ऊपर से तुम्हारे साथ मीठी–मीठी बातें कर रहा है लेकिन वह तुम्हें नहीं चाहता। उसी के छल से तुम इतनी दुःखी हो और तुम्हें भी चाहिए कि प्रेम बंधन तोड़ डालो।

15. आप धर्म के नियाम है, जिन स्त्रियों की धर्म बांध कर................................आप सन्तुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं? (पृष्ठ–54)

प्रसंग :

शकराज की हत्या के पश्चात् ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से अपना विवाह–सम्बन्ध तोड़ डालना चाहती है। इसी सन्दर्भ में मन्दाकिनी पुरोहित को और उनके धर्म–शास्त्रों को चुनौती देती हुई नारी अधिकारों की मांग करती हुई कहती है –

व्याख्या :

हे धर्माचार्य आप धर्म के नियम बनाने वाले हैं, आपके धर्मशास्त्र स्त्री को बिना पूछे उसे पुरुष के हाथों में सौंप देते हैं। उसके सब अधिकार छीनकर उसे पुरुष के आश्रित कर देते हैं। मैं जानना चाहती हूँ कि जब पुरुष स्त्री को अपनी दासी समझकर उस पर अमानुषिक अत्याचार करता है उस समय आपके धर्मशास्त्र में क्या ऐसी व्यवस्था है जो पुरुष के अत्याचारों से नारी की रक्षा कर सके। उसकी मुसीबत में सहायक हो सके। आपकी और आपके धर्मशास्त्रों की यह कल्पना मात्र है कि पुरुष और स्त्री विवाह के बाद एक–दूसरे के सहयोग से सुखी रह सकेंगे। आपके धर्मशास्त्र इस आदर्श की कल्पना से ही सन्तुष्ट होकर चुप हो बैठते हैं जबकि वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत है। क्योंकि जब पुरुष नारी पर अत्याचार करता है तो उसकी रक्षा का कोई विधान आपके धर्मशास्त्र में नहीं है। इसलिए धर्मशास्त्रों के इन एकपक्षीय नियमों को क्योंकर माना जाए।

16. नारी हृदय, जिसके मध्य बिन्दु से हटकर शास्त्र का एक मंच कील की तरह गड़ गया है। और उसे अपने सरल प्रवर्तनचक्र में घूमने से रोक रहा है।

प्रसंग :

ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त को हृदय से प्रेम करती है और उसकी वह पत्नी बनना चाहती है। लेकिन धर्मशास्त्रों के नियम उसे ऐसा करने से रोकते हैं, क्योंकि वह रामगुप्त की विवाहिता है। उसके इसी द्वन्द्वात्मक मन की ओर संकेत करके मन्दाकिनी कहती है कि –

व्याख्या :

जिस प्रकार किसी चक्र के मध्य की कील उस स्थान से हट कर कहीं और फंस जाती है और उसकी गति रुक जाती है, उसी तरह ध्रुवस्वामिनी के जीवन में धर्मशास्त्रों के नियम कील की तरह गढ़ गई हैं। यद्यपि ध्रुवस्वामिनी के मन में चन्द्रगुप्त के लिए गहरा प्रेम है, लेकिन धर्मशास्त्रों के वे मन्त्र कील बन कर ध्रुवस्वामिनी को उसकी ओर बढ़ने से रोक रहे हैं।

2.5.2.2 गीतों की व्याख्या :

1. यह कसक अरे आंसू सह जा................................शीतलता फैलाता बह जा (पृष्ठ–21, प्रथम अंक)

प्रसंग :

इस गीत में मन्दाकिनी के हृदय की भावनाओं की सुन्दर झलक मिलती है। रामगुप्त के ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के प्रति किए गए अत्याचार से वह क्षुब्ध है। उसके हृदय की वेदना आंसूओं के रूप में बहकर बाहर आना चाहती है। लेकिन वह आंसू दुर्बलता को प्रकट करना नहीं चाहती और चाहती है कि आंसूओं से इस संतप्त वसुधा को शीतलता प्राप्त हो।

व्याख्या :

इस कलुषित वातावरण को देखकर मेरे हृदय में जो पीड़ा उत्पन्न हो रही है, मेरे आंसूओं इस पीड़ा को तुम सहन करो। तुम इस प्रकार नीचे गिरकर मेरी दुर्बलता को प्रकट न करो बल्कि मेरे हृदय में जो विनम्र स्वाभिमान है और मेरा अपना अस्तित्व है उसका ध्यान मुझे निरन्तर दिलाते रहो। तुम प्रेम का रूप बनकर छलक उठो और कोने में प्रेम और करुणा का अपना नीरव स्वर भर दो। यह पृथ्वी जो दुखों से संतप्त है। इसकी कहानी पर अपनी करुणा की शीतल धारा फैला दो।

गीत : विशेषता : प्रस्तुत गीत में नाटककार ने करुणा को संतप्त विश्व के लिए मंगलमय माना है।

2. पैरों के नीचे अलधर हो..............................ऊपर ऊँचे सब झेल चलें।

प्रसंग :

ध्रुवस्वामिनी शक–शिविर में पहुंचाने के लिए चन्द्रगुप्त और सामन्तकुमार उसके साथ जा रहे हैं उस समय उन्हें प्रोत्साहन देती हुई मन्दाकिनी गम्भीर स्वर में गाती हुई कहती है कि –

मनुष्य वह है जो दृढ़ता के साथ कठिनाईयों का सामना करता हुआ आगे बढ़ता है। चाहे उसके पैरों के नीचे समुद्र लहरा रहा हो, बिजलियां चमक रही हों, चारों ओर सैंकड़ों झरने बह रहे हों या चारों ओर सन्नाध हो, या तेज हवा चल रही हो, जिससे वृक्ष टूट–टूट कर गिर रहे हों, तब भी पर्वतों के कठिन भागों पर बिना थके चलने वाला पुरुष ऊपर नीचे आगे की इन सब कठिनाईयों को झेलता हुआ आगे बढ़ता है।

ऐसा उत्साही व्यक्ति छाया की मूर्ति बनकर आगे बढ़ता जाता है। अंधेरे में प्रकाश फैला देता है, पीड़ा की हंसी उड़ाता हुआ, बाधाओं को ठुकराता हुआ और कष्टों में मुस्कुराता हुआ अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है, अपनी दृढ़ता का परिचय देता है और आगे बढ़ता जाता है। वह अंधकारपूर्ण रात्रि में खिले हुआ तारों के समान चमकता है। उसके प्रत्येक चरण में विनाश का ताण्डव नृत्य होता है और सप्तस्वर विलीन हो जाते हैं। चाहे भयंकर कोलाहल चारों दिशाओं में व्याप्त हो और रात्रि भय से चकित होकर कांप रही हो, स्वेद की नदियां बह रही हों,

इन सब कठिनाईयों को झेलते हुए आगे बढ़े चलें।

चाहे पर्वत चलायमान हो जाये, शान्ति भंग हो जाये और उनका सौन्दर्य नष्ट हो जाये। उत्साही पथिक रोता चिल्लाता नहीं बल्कि अपने साहस पर विश्वास रखकर कठिनाईयों की ज्वाला को शिव की तरह पीकर, विश्राम को शाप समझकर छोड़ता हुआ, अपने आस–पास की सब कठिनाईयों को झेलता हुआ साहस के साथ आगे बढ़ता हुआ चला जाता है।

3. यौवन तेरी चंचल छाया...कह तू पथिक कहां से आया?

प्रसंग :

मिहिरदेव की प्रतिपालिका पुत्री और शकराज की प्रेयसी कोमा बड़े ही कोमल स्वभाव की तुलना है, प्रेम माधुर्य से उसका हृदय सरोबार है। जीवन के सारे संताप को भूलकर वह प्रेम का मधुर घूंट पी लेना चाहती है। वह यौवन की उन अभिलाषाओं को इस गीत में अभिव्यक्त कर रही है।

व्याख्या :

मनुष्य के जीवन में यौवन का आगमन बहुत थोड़ी देर के लिए होता है और उसके आगमन से मनुष्य का रोम–रोम झकृत हो उठता है। इसलिए कोमा कहती है कि हे यौवन तुम बड़े चंचल हो, तुम्हारे आने से मेरे रोम–रोम में एक चंचलता जाग्रत हो गई है। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे रहते प्रेम के मधुर रस की घूंट भरकर आनन्दित हो सकूं। हे छलिया मुझे पता ही नहीं चला कि कब तूने आकर मेरे हृदय रूपी प्याले को यौवन की मस्ती से भर दिया। तुम्हारे आने से मेरे जीवन में उसी तरह मस्ती के स्वर फूट पड़ते हैं। हे पथिक तू क्षण भर को रूकने वाला है पर मुझे यह तो बता जा कि कहां से आया है।

4. अस्ताचल पर युवती संध्या की.......................................तूने क्यों बाधा डाली है।

प्रसंग :

रामगुप्त शकराज की सन्धि की शर्तों को स्वीकार कर लेता है और ध्रुवस्वामिनी को भी उसके पास भेजने को तैयार हो जाता है। खिंगल से यह समाचार सुनकर शकराज खुशी से फूला नहीं समाता और विजयोत्सव मनाने का आदेश देता है। संध्या का मादक वातावरण है, नर्तकियां मस्ती में भरकर गीत गा रही हैं, जिसमें प्रकृति के साथ शकराज के विलासपूर्ण वातावरण को भी प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या :

सूर्य अस्त हो गया, चारों ओर अंधेरा फैलने लगा है। ऐसा लगता है मानो संध्या रूपी सुन्दरी ने अपने काले घुंघराले केश चारों ओर बिखेर दिए हैं। इस अन्धकारपूर्ण वातावरण में संध्या सूर्य की लालिमा छीनकर ऐसी अनोखी लग रही है कि जैसे नीलम की प्याली में मदिरा छलक रही हो। तारों का प्रतिबिम्ब पहाड़ियों की झीलों में प्रतिबिम्बित होकर ऐसा लगता है मानों वे झीलें रत्नों से भरी हुई हों, वृक्षों की शाखाएं अपने से लिपटी हुई लताओं को चूमने के लिए झुक रही हैं। नायकों नायिकाओं के हृदय से प्रणय जनित रोष दूर हो गया है। उसका मन प्रेम से अभिभूत हो गया है और वे अपने प्रेमियों से मुस्कुराती हुई प्रेम भरी मधुर चर्चा करने लगी हैं, जिसमें प्रेम की लहरें उमड़ पड़ी है। प्रेमीयुगल कुंजों के झुरमुट में से प्यार करने के लिए निकल रहे हैं, मानों वे प्रेम से अपने मन की प्यालियों को भरना चाहते हैं। प्रेम की मदिरा से उनके हृदय की प्यालियां भर उठी है। फूलों ने सुगन्धित पराग उसमें मिला दिया हो और लताओं ने अनुराग से भरकर उनके होंठो से लगा लिया हो। इधर पृथ्वी एक मदमस्त नायिका की तरह प्रेम से उन्मत हो रही है उधर आकाश भी एक नायक की तरह उसे चूमने के लिए नीचे को झुक रहा है। चारों ओर मस्ती का वातावरण है सब अपने सुख की मस्ती में झूम रहे हैं। ऐसे में तू क्यों उदास हो रही है।

2.5.3 सारांश :

इस पाठ में नाटक के प्रमुख गद्य–स्थलों एवं गीतों की सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। व्याख्या से नाटक को समझना सरल एवं सहज हो जाता है। प्रसाद की भाषा संस्कृतनिष्ठ है उसे अर्थों के ज्ञान द्वारा समझा जा सकता है।

2.5.4 शब्दावली :

इस पाठ में विभिन्न कठिन शब्दों को सरल करके समझाया गया है क्योंकि इस पाठ का सम्बन्ध सप्रसंग व्याख्या से है।

2.5.5 बोध प्रश्न :

यह पाठ विभिन्न गद्यांशों की सरल व्याख्या करता है। परीक्षा में भी विभिन्न गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या का ही प्रश्न पूछा जाएगा।

पाठ संख्याः 2.6 (A) **लेखक : श्री निर्मल सिंह**

आधुनिक काल का सामान्य परिचय

पाठ की रूपरेखा

2.6.0 उद्देश्य
2.6.1 प्रस्तावना
2.6.2 आधुनिक काल का सामान्य परिचय
 2.6.2.1 भारतेन्दु युग
 2.6.2.2 द्विवेदी युग
 2.6.2.3 छायावादी युग
 2.6.2.4 प्रगतिवादी युग
 2.6.2.5 प्रयोगवाद और नई कविता
2.6.3 सारांश
2.6.4 शब्दावली
2.6.5 बोध प्रश्न।

2.6.0 उद्देश्य :

इस पाठ से आपके हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल का परिचय दिया जाएगा जिसका समय सन् 1900 ई. से आरंभ होता है। भारतीय–इतिहास में अंग्रेजों के आगमन के समय हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप नवीन साहित्यिक विधाओं का आरंभ हुआ। आधुनिक काल को विभिन्न कालों में बांटा जाता है क्योंकि इन अलग–अलग कालों में साहित्य का विकास विभिन्न रूपों में हुआ। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि;

* हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिक–काल को प्रमुख रूप से चार भागों में बांटा गया है,
* आधुनिक हिन्दी–गद्य का आर्विभाव भारतेन्दु से हुआ इससे पहले काल का भारतेन्दु युग कहा जाता है,
* आधुनिक काल में गद्य के विविध रूपों का विकास हुआ, और
* आधुनिक साहित्य का विशिष्ट महत्व है।

2.6.1 प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के बाद आधुनिक काल का समय आता है जिससे गद्य की विविध विधाओं का विकास हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके समकालीन लेखकों ने विभिन्न प्रकार की साहित्यिक रचनाएं की और साहित्य के विकास में योगदान दिया। भारतेन्दु युग के बाद–द्विवेदी युग में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ साहित्य रचनाओं में उत्तरोक्षर विकास होता गया। आज साहित्य लेखन विभिन्न रूपों में हो रहा है जिसका संक्षिप्त परिचय इस पाठ में दिया जाएगा।

2.6.2 आधुनिक काल का सामान्य परिचय :

भारतेन्दु के आगमन से हिन्दी कविता में एक युगान्तर उपस्थित होता है। उनसे पूर्व हिन्दी में रीतिकालीन काव्य–धारा प्रवाहित हो रही थी। इस काव्य–धारा में शृंगार की प्रधानता, लक्षण–ग्रन्थों का निर्माण तथा आश्रयदाताओं को रिझाने का प्रयास प्रवृत्तियाँ थी। यह कविता विलास के भार से दबी हुई थी और इसमें जीवन की विविधता का अभाव था। सन् 1847 के उपरान्त मुगल साम्राज्य के वैभव के हास के साथ इस में एक नई चेतना उत्पन्न करने में समर्थ हुआ। अंग्रेजी शासन और शिक्षा के प्रचार से छुटकारा पाने के लिए भारतवासियों ने करवट ली। जीवन के साथ कविता में भी परिवर्तन हुआ। फलतः नई कविता पुरानी काव्य–रूढ़ियों को तोड़कर स्वच्छन्द रूप से वहने लगी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक युग के सर्वप्रथम कवि के रूप में आते हैं। आधुनिक युग को निम्नलिखित पाँच भागों में बाँटा जा सकता है –

क. भारतेन्दु युग (1847 से 1900 ई.)

ख. द्विवेदी युग (1900 से 1920 ई.)

ग. छायावादी युग (1920 से 1934 ई.)

घ. प्रगतिवादी युग (1934 से 1943 ई.)

2.6.2.1 भारतेन्दु युग :

भारतेन्दु युग आधुनिक कविता का प्रवेश द्वार है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता को रीतिकालीन दरबारी तथा शृंगार–प्रधान वातावरण से निकालकर उसका जनता से नाता जोड़ा। इस युग के मुख्य कवि थे – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि। भारतेन्दु युग की कविता में प्राचीन और आधुनिक काव्य–प्रवृत्तियों का समन्वय मिलता है। उसमें भक्तिकालीन भक्ति–भावना और रीतिकालीन शृंगार–भावना के साथ–साथ राष्ट्रीयता, हास्य और व्यंग्य, सामाजिक जागरण, प्रकृति–चित्रण आदि आधुनिक कावरू–प्रवृझियों के भी दर्शन होते हैं। इस युग की कविता का महत्व इस बात में है कि इसमें देश और जनता की भावनाओं और समस्याओं को पहली बार अभिव्यक्ति मिली है। इस काल के कवि ने देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशा के करुण चित्र प्रस्तुत किये हैं। समाज–सुधार का स्वर इसमें प्रबल है। भारतेन्दु और उनके युग के कवियों ने अतीत के सांस्कृतिक गौरव का चित्र प्रस्तुत करके लोगों में आत्म–सम्मान की भावना भरने का प्रयत्न किया। इस युग का काव्य अपने युग की समस्याओं और आवश्यकाताओं की अभिव्यक्ति है। इस युग में काव्य की भाषा ब्रजभाषा थी।

2.6.2.2 द्विवेदी युग :

सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ द्विवेदी युग का प्रारम्भ होता है। यह युग खडीबोली के आन्दोलन का युग हैं महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔंध', मैथिलीशरण गुप्त आदि के प्रयत्नों से काव्य में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली का सफलतापूर्वक प्रयोग होने लगा। इस युग की कविता को हम आदर्शवादी काव्य–परम्परा का युग कह सकते हैं। यह काव्य–युग भारतेन्दु–कालीन प्रवृत्तियों का विकासकाल कहा जा सकता है। श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय, सियाराम शरण गुप्त आदि की कृतियों में राष्ट्रीयता, समाज–सुधार, भारत का गौरव–गान तथा देश में नव–जागरण का स्वर सुना जा सकता है।

इस युग में उपदेशात्मक, वर्णन–प्रधान इतिवृत्तात्मक कविता की ही प्रधानता थी, जिसका मुख्य उद्देश्य धर्म और नैतिकता का उपदेश है। इस युग की धार्मिक तथा देश–प्रेम की भावना भारतेन्दु युग से अधिक उदारतथा व्यापक है। कविता की विवि विधाओं का विकास (जैसे महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, प्रगीत आदि) इस युग में द्रष्टव्य हैं। 'साकेत' और 'प्रिय–प्रवास', इस युग के दो प्रतिनिधि महाकाव्य हैं, जिनमें द्विवेदीयुगीन भाव, भाषा, छन्द

आदि की सभी प्रवृतियाँ प्राप्त हो जाती हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि द्विवेदी युग का महत्त्व नए विषयों और नई भाषा, दोनों दृष्टियों से है।

2.6.2.3 छायावादी युग :

द्विवेदी युग की उपदेशात्मक एवं इतिवृतात्मक कविता की प्रतिक्रियास्वरूप छायावादी कविता का विकास हुआ। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा तथा डॉ. रामकुमार वर्मा इस काव्य–धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। हिन्दी की आधुनिक कविता में छायावादी कविता को सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता है। यह काव्य आधुनिक युग का स्वर्ण–काव्य है। इस काव्य में वैयक्तिकता की प्रधानता है। प्रकृति–सौन्दर्य के चित्रण में प्रकृति के प्रति इन कवियों का आकर्षण और प्रेम व्यक्त होता है और कहीं–कहीं प्रकृति के भीतर विराट् को भी कवियों ने अनुभव किया है। इस कविता में शृंगार–भावना से भिन्न है। यह शृंगार स्थूल तथा मांसल न होकर सूक्ष्म एवं काल्पनिक है। छायावादी काव्य भाषा, आलंकृति तथा मुक्तछन्द विधान की दृष्टि से भी अनुपम हैं। 'कामायनी', 'पल्लव', 'परिमल' तथा 'यामा' छायावादी युग की प्रतिनिधि रचनाएं हैं।

2.6.2.4 प्रगतिवादी युग :

छायावादी कविता व्यक्तिमूलक कविता थी, इसकी प्रतिक्रियास्वरूप हिन्दी में प्रगतिवाद का प्रारम्भ हुआ। राजनीति के क्षेत्र में जो मार्क्सवाद है, साहित्य के क्षेत्र में उसे प्रगतिवाद की संज्ञा दी जाती है। मार्क्सवाद का लक्ष्य समाज में साम्यवादी व्यवस्था स्थापित करना है और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह हिंसात्मक क्रान्ति को साधन के रूप में स्वीकार करता है। पन्त, निराला, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, नागार्जुन, नवीन, अंचल, मिलिन्द आदि कवियों ने अपनी कविताओं में शोषकों के प्रति घृणा, शोषितों के प्रति सहानुभूति, सामाजिक समता के प्रति आग्रह, रूढ़ियों का विरोध, क्रान्ति की भावना की आवश्यकता पर बल देकर प्रगतिवादी साहित्य की रचना की है। प्रगतिवादी कविता आध्यात्मिक मूल्यों का निषेध करके भौतिक मूल्यों की स्थापना करती है। वस्तुतः इस कविता में वाद का अंश अधिक है, काव्य का कम। यह कविता प्रचारात्मक अधिक है, कवित्व की दृष्टि से इसका मूल्य अधिक नहीं।

2.6.2.5 प्रयोगवाद और नई कविता :

सन् 1943 के आसपास छायावादी कविता के प्रति एक अन्य प्रतिक्रिया प्रयोगवादी काव्य–धारा के रूप में प्रकट हुई इस कविता में छायावादी वैयक्तिकता को हृदय के धरातल पर ग्रहण न करक बौद्धिक धरातल पर ग्रहण किया गया है। 1943 ई. में अज्ञेय के सम्पादकत्व में सात कवियों की कविताओं का संग्रह 'तार सप्तक' प्रकाशित हुआ। प्रथम सप्तक के कवि हैं – सर्व श्री अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, माथुर और रामविलास शर्मा। तदनन्तर 1951 में दूसरा सप्तक भी प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से प्रयोगवादी कविता का विकास हुआ। सन् 1953 के उपरान्त 'नई कविता' के नाम से प्रयोगवादी काव्य–धारा का विकसित रूप प्राप्त हुआ हैं। 'नई कविता' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह वाद से सर्वथा मुक्त है। नई कविता शुद्ध साहित्यिक वाद है। इस कविता के वस्तु–पक्ष में निराशा, वेदना, नास्तित्कता, आस्था, विश्वास, हास्य–व्यंग्य, यथार्थ–चित्रण, बीभत्स वर्णन, व्यक्तिवाद, समष्टि–भावना आदि विरोधाभासी प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियाँ हैं और शिल्प–पक्ष में नए उपमानों, नए प्रतीकों, नए बिम्ब–विधान, मुक्त छन्द आदि की ओर कवि का झुकाव दिखाई देता है।

इस तरह आधुनिक कविता में निरन्तर विकास हुआ है। भारतेन्दु और द्विवेदी युग के कवियों ने समाज की आलोचना करके समाज–सुधार और स्वदेश–प्रेम की भावना को प्रकट किया है। छायावादी कवि अन्तर्मुखी है। प्रगतिवादी कवि सामाजिक समता के लिए क्रान्ति का आह्वान करता है और प्रयोगवादी काव्य में वस्तु और शिल्प की दृष्टि से नए प्रयोग हैं। आधुनिक कविता इस प्रकार अपने क्षेत्र का पर्याप्त विस्तृत बना रही है। इसमें

अभाव भी है, फिर भी इसका भविष्य उज्ज्वल है।

2.6.3 सारांश :

इस पाठ में हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का संक्षिप्त परिचय देना हमारा अभिष्ट रहा। वास्तव में इस काल में हिन्दी साहित्य में गद्य की विविध–विधाओं का पर्याप्त विकास हुआ जिनका परिचय अगले पाठों में दिया जाएगा।

2.6.4 शब्दावली :

स्वच्छन्द	–	स्वतंत्र
समन्वय	–	मेल
इतिवृक्षात्मकता	–	कथा कहने की प्रवृत्ति
मांसल	–	स्थूल
भौतिक	–	सांसारिक
नास्तिक	–	ईश्वर में विश्वास न रखने वाला

2.6.5 बोध प्रश्न :

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का आरंभ कब से माना जाता है ?
2. भारतेन्दु किस काल के कवि हैं ?
3. भारतेन्दु की चार रचनाओं के नाम बताएं।
4. 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशान कब आरंभ हुआ ?
5. प्रगतिवादी कविता पर किस वाद का प्रभाव मिलता है ?

पाठ संख्याः 2.6(B) **लेखक : श्री निर्मल सिंह**

जीवनी और संस्मरण का विकास

पाठ की रूपरेखा

2.6.0 उद्देश्य
2.6.1 प्रस्तावना
2.6.2 हिन्दी संस्मरण का विकास
2.6.3 हिन्दी जीवनी का विकास
2.6.4 सारांश
2.6.5 शब्दावली
2.6.6 बोध प्रश्न

2.6.0 उद्देश्य :

इस पाठ में आपको हिन्दी साहित्य की कुछ नवीन विधाओं से परिचित करवाया जाएगा। एकांकी नाटक का एक रूप होता है जो नाटक की अपेक्षाकृत आकार में छोटा होता है। इसे भी रंगमंच पर अभिनीत किया जाता है। संस्मरण और जीवनी लेखन साहित्य की नवीनतम विधाएं हैं। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि,

* एकांकी एक अंक में, एक दृश्य–योजना में और थोड़े समय में समाप्त होने वाला नाटक का ही एक रूप है,
* हिन्दी में एकांकी लेखन का आरंभ भारतेन्दु काल से माना जाता है,
* जीवनी साहित्य की नवीन विधा है जिसमें किसी महापुरुष, लेखक या कवि के जीवन की सत्य घटनाओं का उल्लेख होता है, और
* संस्मरण में लेखक अपने जीवन में घटित विशेष घटनाओं का वर्णन कलात्मक ढंग से करता है।

2.6.1 प्रस्तावना :

आज हिन्दी साहित्य विविध रूपों में विकसित हो रहा है। विदेशी साहित्य के प्रभाव स्वरूप हिन्दी में भी नवीन विधाएं विकसित हो रही है। नाटकों की रचना पर्याप्त समय से हो रही है और साथ ही एक अंकों वाले एकांकी भी पर्याप्त मात्रा में प्रचलित है। जीवनी लेखन एवं संस्मरण लेखन भी विशेष रूप से विकसित हो रहे हैं। इनका परिचय इस पाठ में विस्तुत रूप में दिया जा रहा है।

2.6.2 हिन्दी संस्मरण का विकास :

हिन्दी में संस्मरण लिखने की कला अपेक्षाकृत नयी है। गद्य का विकास होने पर पहले निबंध, कहानी, उपन्यास, नाटक की विधाएँ विकसित होती हैं। इसके बाद लेखकों का ध्यान नये माध्यमों की ओर धीरे–धीरे जाता है बीसवीं शताब्दी में अनेक नये माध्यमों का विकास हुआ है, जिनमें गद्य–गीत, एकांकी, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्म–कथा, जीवनी, यात्रा–वर्ण, पत्र, डायरी, इंटरव्यू तथा रिपोर्ताज मुख्य हैं। अधिकांश लेखक प्रायः

प्रतिष्ठित विधाओं में लिखना पसंद करते हैं, क्योंकि इससे उन्हें सरलता से प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है। अतः नये माध्यमों की कला एक कठिन कला भी है। उसमें सफल होना उतना सरल नहीं है, जितना प्रायः समझा जाता है। अब तो ऐसा समय आ गया है कि कहानी, संस्मरण और रेखाचित्र में भेद करना कठिन हो गया है।

कहानी सत्य पर आधारित भी हो सकती है और एकदम काल्पनिक भी; लेकिन संस्मरण के न तो पात्र काल्पनिक हो सकते हैं और न घटनाएं। दोनों से ही लेखक का घनिष्ठ और प्रत्यक्ष परिचय होना चाहिए और यह परिचय जितना ही प्रामाणिक कोटि का होगा, उतना ही जीवन्त उस पर आधारित संस्मरण भी होगा। संस्मरण की एक ही सीमा है और वह यह कि संसार में कोई किसी को पूर्ण रूप से नहीं जानता। कोई किसी के व्यक्तित्व के एक पक्ष को उभार कर रख सकता है, कोई दूसरे पक्ष को। उस पक्ष को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना ही संस्मरण की कला है। इससे यह समझने की भूल न होनी चाहिए कि जिस पर कहानी नहीं लिखी जी सकती, उस पर संस्मरण लिखा जा सकता है या कि अधूरी कहानी संस्मरण है। इसके विपरीत संस्मरण की कला भी अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र साहित्यिक विधा है।

हिन्दी गद्य साहित्य में संस्मरण–साहित्य का प्रचलन आधुनिक काल में पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव और वातावरण में हुआ है। अधिकांश विद्वान् आचार्य पद्मसिंह शर्मा को हिन्दी संस्मरण–साहित्य का प्रवर्त्तक मानते हैं जबकि संस्मरण–साहित्य के क्षेत्र में सबसे पहले आचार्य चतुरसेन शास्त्री के संस्मरण हमारे सामने आते हैं। इनके संस्मरणों में जीवन के विभिन्न भावपक्षों, स्तरों, विचारों के साथ–साथ राजनीति, संस्कृति आदि युगपरक स्थितियों पर भी प्रकाश पड़ता है। 'पहली सलामी' संस्मरण में शास्त्री जी ने असेम्बली में भगतसिंह द्वारा बम फेंकने का आँखों देखा वर्णन किया है। लोकमान्य तिलक संस्मरण में लेखक ने उनके सम्पर्क की कटु–मधुर स्मृतियों का चित्र प्रस्तुत किया है। इसमें तत्कालीन राजनीति की उथल–पुथल का चित्र भी प्रस्तुत हो गया है। मेरे बालसखा शान्ति में प्रसिद्ध वैज्ञानिक शान्तिस्वरूप भटनागर, उत्तर के खेमरू स्वामी श्रद्धानन्द, 'जब मैं उनसे मिलने गया' में जवाहरलाल नेहरू से एक भेंट, हाजी मुहम्मद अल्ला रखिया शिवाजी ब्रजबल्लभ शर्मा, रामरखा सहगल, पंक लोटे लाल ऐसे ही संस्मरण हैं। 'साहित्य का मोड़' 'उत्तम जल का' 'मुबलिग पाँच रुपये' 'श्री जैनेन्द्र का विवाह', 'ठण्डी हवायें', 'पैंसठवाँ जनम नक्षत्र', 'अड़सठ की देहरी से' आदि शास्त्री जी को साहित्यिक संस्मरण हैं।

हिन्दी के संस्मरण लेखकों में रामवृक्ष बेनीपुरी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। आपके संस्मरणों में विषय के वर्णन के साथ स्वयं की अनुभूतियों का भी मार्मिक चित्रण हुआ है। ये पाठकों के हृदय में करुणा, सहानुभूति, हर्ष, विभेदता आदि उत्पन्नकरने में समर्थ हैं। भाषा में सरलता और सहजता के साथ तीखी व्यंग्यात्ममकता भी मिलती है। आपके जेल–जीवन के मार्मिक संस्मरणों की 'जंजीरें और दीवारें' संस्मरण–संग्रह हैं। 'माटी की मूरतें' इनका दूसरा संस्मरण–संग्रह है।

हिन्दी–संस्मरण–साहित्य के क्षेत्र में महादेवी जी का शीर्ष स्थान है। महादेवी जी मूलतः कवयित्री हैं। यही कारण है कि आपके संस्मरणों में कवि हृदय की कोमलता, भावुकता और मधुरता मिलती है। इनके संस्मरण 'चित्रात्मकता', 'ध्वन्यात्मकता' लाक्षणिकता आदि से सजे होते हैं। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखायें', 'पथ के साथी' और 'स्मारिका' आपके संस्मरण–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। महादेवी के रेखाचित्र संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं। वे व्यक्ति–विशेष अथवा घटना–विशेष के चित्रांकन मात्र नहीं हैं, अपितु उनकी व्यक्तिगत रागात्मक अनुभूति से आर्द्र हैं। उन्होंने स्मारिका–'कुछ विचार' में लिखा है कि मेरे संस्मरणों में रेखाचित्र भी मिश्रित हो जाते हैं जिनका स्पष्ट कारण मेरा रेखांकन प्रेम ही कहा जायेगा। ''व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि को अपने रागात्मक परिधि में लाकर देखना मेरे स्वभाव के अनुकूल पड़ता है, क्योंकि उसी स्थिति में अनेक सुख–दुःखों से मेरा तादात्म्य सम्भव है।''

'अश्क' जी ने भी संस्मरण लिखे हैं। इनमें से कुछ संस्मरण–शैली और कुछ पत्र और डायरी–शैली

में हैं। 'साहित्यिक–संस्मरण' पुस्तक में किशोरीलाल वाजवेयी के साहित्यिक जीवन के सुन्दर, रोचक और कलापूर्ण संस्मरण हैं। इस पुस्तक के चार भागों में 1919 से लेकर 1954 तक संस्मरण है। कन्हैयालाल 'प्रभाकर' के संस्मरण बड़े रोचक हैं। उनकी 'जिन्दगी मुस्कराई' सन् 1955 की सर्वश्रेष्ठ संस्मरण–पुस्तक मानी गई। 'जो भूल न सका' इनकी अन्य रचना है। जैनेन्द्र जी पर लिखे संस्मरण में जैनेन्द्र जी की प्रकृति मूर्तिमान हो उठी है।

संस्मरण लेखकों में बनारसीदास चतुर्वेदी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'संस्मरण' नाम से इनके इक्कीस संस्मरणों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इन्होंने जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित व्यक्तियों पर संस्मरण लिखे हैं। इनके अतिरिक्त भगवती प्रसाद वाजपेयी द्वारा रचित 'निराला', विनियमोहन शर्मा रचित 'लक्ष्मीधर वाजपेयी' देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा रचित 'निराला', विनयमोहन शर्मा रचित 'सन् बयालीस के संस्मरण', सेठ गोविन्ददास रचित 'स्मृति के कण', शिवरानी रचित 'प्रेमचन्द्रः घर में', विष्णु शर्मा रचित 'इन लोगों के बीच में', कौशल्या अश्क रचित 'अश्कः एक रंगीन व्यक्तित्व', भदन्त आनन्द कौसल्यायन रचित 'जो लिखना पड़ा', शान्ति प्रिय द्विवेदी रचित 'पथ चिन्ह', काका कालेलकर रचित 'स्मरण यात्रा', गुलाबराय रचित 'मेरी असफलताएँ', माखन लाल चतुर्वेदी रचित 'समय के पांव', राधिकारमण प्रसाद सिंह रचित 'तब और अब', श्रीराम शर्मा कृत 'सेवाग्राम की डायरी', राहुल सांकृत्यायन रचित 'बचपनकी स्मृतियाँ, सियाराम शरण गुप्त रचित 'झूठा सच', कन्हैयालाल मिश्र रचित 'दीप जले शंख बजे', अज्ञेय रचित 'आत्मनेपद' और 'अरे यायावर रहेगा याद', हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'मृत्युंजय', 'रवीन्द्रनाथ', देवेन्द्र सत्यार्थी रचित 'रेखाएं बोल उठी', प्रमुख संस्मरण रचनाएँ हैं।

आधुनिक पत्र–पत्रिकाओं जैसे धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बनी, आजकल, नवभारत टाइम्स, दैनिक ट्रिव्यून, जनसत्ता, इण्डिया टूडे, हिन्दुस्तान, जागरण आदि के साहित्यिक संस्करणों में निरन्तर संस्मरणात्मक साहित्य प्रकाशित होता रहता है। अतः संस्मरण आज के युग की विकासशील विधा है।

2.6.3 जीवनी का विकास :

अकाल्पनिक वृत्तों के लिए गद्य के साहित्यिक या कहें सर्जनात्मक रूप के प्रयोग तब से आरंभ हुए माने जा सकते हैं जब से इन वृत्तों की सूचनात्मक के स्थान पर कलात्मक परिकल्पना प्रधान हुई। हिंदी के प्रारंभिक सूचनात्मक गद्य–वृत्तों में जीवनी और आत्मकथा हैं। जीवनी के कुछ रूप मध्यकालीन ब्रजभाषा में मिलते हैं जैसे नाभादास कृत 'भक्तमाल' (17वीं शती) तथा चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (17वीं शती)। यहाँ 'वार्ता' शब्द का प्रयोग ही इन रचनाओं के स्वरूप को प्रकट कर देता है। आधुनिक काल के आरंभ मैं जीवनी के नयकों के लिए प्रायः महाकाव्योचित गुण आवश्यक समझे जाते थे। जीवनियों का प्रस्तुतीकरण पहले प्रकाशकीय स्तर पर आरंभ हुआ। वर्तमान शताब्दी के आरंभ में कलकत्ता और वाराणसी के प्रमुख प्रकाशकों के विज्ञापनों को देखने से ज्ञात होता है कि वे तीन प्रकार की पुस्तकें आवश्यक रूप से तैयार करवाते थे – एक तो जासूसी और उनके पीछे किसी प्रकार की कलात्मक प्रेरणा नहीं देखी जा सकती। प्रकाशकीय दृष्टि से तैयार होने के कारण प्रायः इनके ऊपर लेखक का नाम भी नहीं दिया जाता था। अधिकतर पौराणिक और ऐतिहासिक और कभी–कभी रामसामयिक चरित्रों को जीवनी के नायक रूप में चुना जाता था। 1917 में कलकत्ता से प्रकाशित एक अनूदित उपन्यास के अंत में 'वीर–चरितावली' शीर्षक से एक विज्ञापन इस प्रकार दिया हुआ है –

'मातृभूमि भारत वर्ष के वीर–वीरामनाओं के चरित्र पढ़ने की किसकी इच्छा नहीं होती ? इस पुस्तक में निम्नलिखित वीर–वीरांगनाओं की 14 वीर कहानियाँ सन्निवेशित की गई है – 1. रानी दुर्गावती 2. रानी लक्ष्मीबाई 3. जवाहर बाई 4. वीरधात्री पन्ना 5. वीर बालक और वीरनारी 6. राजकुमार चण्ड 7. महाराज पृथ्वीराज 8. बादलचन्द 9. रायमल 10. सिख वीर रणजीत सिंह 11. हमीर 12. महाराणा प्रताप सिंह 13. छत्रपति शिवाजी प्रभृत्ति। पुस्तक में हाफ्फटोंन पफोटो के सुंदर–सुंदर 5 चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य केवल 11 आना।'

इस प्रकार के जीवन चरित्रों में इतिहास–दृष्टि का कम, वृत्तांत शैली का उपयोग अधिक होगा। समसामयिक चरित्र यहाँ लिए नहीं गए, इसलिए तथ्य–संग्रह की बात बहुत कम रहती है। व्यावसायिक धारा से कुछ भिन्न रूप में हिन्दी के आरंभिक गद्य लेखकों द्वारा लिखी हुई जो जीवनियाँ हमारे सामने आती हैं उनकी मूल वृत्ति भी परिचयात्मक और उपदेशात्मक है। इस युग के जीवनीकार की दृष्टि आदर्श और शिक्षाप्रद जीवन अंकित करने की है, उसकी प्रेरणा व्यावसायिक हो या कि सुधारवादी। मानव व्यक्तित्व की व्याख्या, उसके संघर्ष और अंतःप्रक्रियाएँ जीवनी या आत्मकथा का हिस्सा बन सकें, यह उद्देश्य इन लेखकों का नहीं था और न इसके योग्य विकसित गद्य उनके पास था।

साहित्यिक ढंग से लिखी गई, या कि ठीक–ठाक कहें तो साहित्यकारों द्वारा लिखी गई जीवनियों का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से होता है। कार्तिकप्रसाद खत्री, भारतेंदु हरिशचंद्र तथा विशेष रूप से देवी प्रसाद मुंसिपफ ने इस क्षेत्र में कार्य किया। ये रचनाएँ 'जीवनी' कम् 'चरित्र' या 'वृत्त' अधिक हैं। धीरे–धीरे पौराणिक चरित्रों को भी आधुनिक संदर्भ में व्याख्यायित करने की वृत्ति अब आरंभ हुई। इस प्रकार की जीवनियों में बँगला उपन्यासकार बंकिमचंद्र चटर्जी की रचना 'कृष्ण चरित्र' अपने समय की एक ख्यात कृति थी। हिन्दी के प्रसिद्ध तत्कालीन लेखक जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के उक्त ग्रंथ का अनुवाद 1913 में भारतमित्र प्रेस से प्रकाशित करवाया था। यहाँ कृष्ण–चरित्र के दोनों पक्षों 'अवतार' और 'आदर्श पुरुष' पर जीवनीकार और भाषांतकार की भी दृष्टि है। कई अन्य अनुवाद भी इस क्षेत्र में आए। बंकिमचंद्र लाहिड़ी द्वारा प्रणीत जीवनी का अनुवाद 'सम्राट् अकबर', शीर्षक से गुलजारीलाल चतुर्वेदी ने किया था (हरिदास एंड कं. कलकत्ताः 1919)। मिरजापुर निवासी विचित्रि कवि गोस्वामी वामानाचार्य गिरि द्वारा अनूदित 'वीरेन्द्र बाजीराव' (लहरी प्रेस, काशीः 1907) भी काफी प्रख्यात हुआ। यूरोपीय इतिहास के सबसे आकर्षत चरित्रों को कुछ जीवनीकारों ने चुना। राधा मोहन गोकुलजी ने यूरोपीय इतिहास के सबसे आकर्षक चरित्रों को कुछ जीवनीकारों ने चुना। राधामोहन गोकुलजी ने यूरोपीय इतिहास के सबसे आकर्षक चरित्रों में से एक नेपोलियन का जीवन–वृत मनोरंजन पुस्तकमाला की 17वीं पुस्तक के रूप में 'नेपोलिया–बोनापार्ट' शीर्षक से प्रकाशित किया (नागरी प्रचारिणी सभाः 1917)।

आधुनिक भारतीय महापुरुषों में महात्मा गाँधी के जीवन चरित्र कई रूपों में लिखे गए थे। इन आरंभिक जीवन–वृत्तों में रामचंद्र वर्मा द्वारा लिखित ग्रंथ 'महात्मा गांधी' (हिन्दी–पुस्तक–भंडार, बंबईः 1921) है, जिसमें गाँधी की विस्तृत जीवनी के अतिरिक्त लेखक ने उनके महत्त्वपूर्ण लेखों और व्याख्यानों को भी संकलित किया था। 'देशबंधु चित्तरंजनदास' (हिंदी साहित्य मंदिर, इंदौरः 1921) संपूर्णानंद द्वारा लिखित संक्षिप्त जीवनी है। यह शायद संयोग से कुछ अधिक माना जायेगा कि इसी वर्ष (1921) में गांधी और चित्तरंजनदास के अतिरिक्त लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का भी जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ। (रामलाल वर्मा, कलकता), जिसके लेखक थे ईश्वरीप्रसाद शर्मा। तिलक के इस वृत्त में 'तिलकावतार' शीर्षक से कविवर मैथिलीशरण गुप्त की एक कविता आरंभ में दी गई है। भारतीय राजनीति के इस युग में प्रसिद्ध देशभक्त मेजिनी का व्यक्तित्व विशेष रूपसे आकर्षक था। लाला लाजपतराय द्वारा मूल उर्दू में लिखित ग्वीसप मेजिनी का जीवन चरित्र केशवप्रसाद सिंह ने 1900 में अनूदित किया।

राजनैतिक क्षेत्र के मनीषियों के अतिरिक्त देश के अन्य मेधावी व्यक्तियां की ओर भी जीवनीकार आकृष्ट हुए। सुखसंपतिराय भंडारी ने 'डाक्टर सर जगदीशचंद्र बसु और उनके आविष्कार' शीर्षक से एक संक्षिप्त जीवनी प्रकाशित की (श्री मध्यभारत पुस्तक एजेंसी, इंदौरः 1919) जिसमें बंगाल के प्रसिद्ध वैज्ञानिक का जीवन वृत्त वर्णित है। बंगाल के क्रांतिकारियों में यतीन्द्रनाथ दास का व्यक्तित्व अपनी भावुकता, सुकुमारता और निर्मलता के लिए प्रख्यात रहा है। दास की एक संक्षिप्त जीवनी इसी दौर में प्रकाशित हुई। आरंभ में ब्रजभाषा के 4 दोहे हैं, अंतिम इस प्रकार है –

स्वारथ रत वै यै सदा, परमारथ सिरमौर।
उन 'जतीन' की और गति, इन 'जतीन' की ओर।।

इन्हीं दिनों अलीपुर बम–केस में अन्यतम अभियुक्त उपेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय की आत्मकथा बँगला में 'निर्वासितेर आत्म कहानी' नाम से प्रकाशित हुई। इसका हिन्दी अनुवाद 'राजनीतिक षड्यंत्र' शीर्षक से उमादत्त शर्मा ने किया (राजस्थान एजेंसी, कलकत्ताः 1921)। पूरी रचना में जेल–यातना, बम–विस्फोट और मृत्यु के वातावरण के बीच विनोद का अंश बड़े प्रीतिकर रूप में व्यक्त हुआ है।

जीवनी–लेखन के इस दौर में क्रमशः वस्तुपरकता के साथ–साथ साहित्यिक भाषा–शैली का भी विकास हो रहा था। इस वर्ग की विशिष्ट और महत्त्वाकांक्षी जीवनियों में से सीताराम चतुर्वेदी कृत 'महामना पंडित मदनमोहन मालवीयः (1937) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पूरे आकार की इस जीवनी में इतिवृत्त और वर्णन के साथ अनेक प्रसंगों में लेखक ने साहित्यिक भाषा–शैली का प्रयोग किया है।

हिन्दी लेखकों की जीवनियाँ भी इसी बीच, स्फुट रूप से ही सही, लिखी जाती रही हैं। इस दिशा का एक आरंभिक प्रयास बाबू श्यामसुंदरदास का था, जिन्होंने 'हिन्दी कोविद रत्नमाला' के दो भागों में (1909, 1914) हिन्दी के चालीस साहित्यकारों तथा हितैषियों का संक्षिप्त जीवनियाँ संकलित कीं। भारतेंदु हरिश्चंद्र का जीवन–चरित' (1904), शिवनंदनसहाय रचित 'हरिशचंद्र' (1905) तथा ब्रजरत्नदास द्वारा रचित 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' (1934)। प्रतापनारायण मिश्र का जीवन–चरित्र बालमुकुंद गुप्त ने अपने पत्र 'भारत मित्र' में लिखा था (1907)। इस क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण जीवनी बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित सत्यनारायण कविरत्न की है। 'कविरत्न सत्यनारायणजी की जीवनी' (1926) में कविरत्न के सीधे–सादे जीवन वृत्त को लेखक ने बड़े आत्मीय भाव से प्रस्तुत किया है।

व्यक्ति को केन्द्र बनाकर पूरे समाज का चित्र प्रस्तुत करने की एक स्थिति ऐसी होती है जहाँ जीवनी–नायक के महत्त्वपूर्ण होने की शर्त नहीं रह जाती। एक साधारण–सामान्य व्यक्ति को उपलक्ष्य बनाकर भी समाज और व्यक्ति का सजीव अंकन संभव होता है। यह जीवनी लेखन के क्षेत्र में एक नया और महत्त्वपूर्ण विकास है। निराला द्वारा प्रस्तुत 'कुल्ली भाट' (1931) ऐसी ही रचना है।

2.6.4 सारांश :

इस पाठ के अध्ययन के बाद स्पष्ट होता है कि वर्तमान युग में हिन्दी साहित्य विविध रूपों में विकसित हो रहा है। इस नवीन रूपों में जीवनी लेखन एवं संस्मरण लेखन का विशेष महत्त्व है।

2.6.5 शब्दावली :

परिलक्षित – दिखाई देता
उन्नायक – बनाने वाले
प्रहसन – व्यंग्यपूर्ण बातें
मूर्तिमान – सजीव
सुकुमारता – कोमलता
उपलक्ष्य – संकेत

2.6.6 बोध प्रश्न :

1. हिन्दी का पहला एकांकी कौन–सा माना जाता है ?
2. एकांकी में कितने अंक होते हैं ?
3. हिन्दी की किसी प्रसिद्ध जीवनी का नाम बताएं।
4. हिन्दी के प्रसिद्ध संस्मरण कौन से हैं ?
5. निराला द्वारा लिखित किसी जीवनी का नाम बताएं।

पाठ संख्याः 2.7 (A) **लेखक : श्री निर्मल सिंह**

आलोचना और रेखाचित्र का विकास

पाठ की रूपरेखा

2.7.0 उद्देश्य
2.7.1 प्रस्तावना
2.7.2 हिन्दी आलोचना
2.7.3 हिन्दी साहित्य में रेखाचित्र
2.7.4 सारांश
2.7.5 शब्दावली
2.7.6 बोध प्रश्न।

2.7.0 उद्देश्य :

इस पाठ में आपको हिन्दी गद्य की नवीन विधा रेखाचित्र का परिचय दिया जाएगा। इसमें किसी विशिष्ट व्यक्ति के जीवन का चित्रांकन सुन्दर शब्दों में किया जाता है। वर्तमान समय में आलोचना भी पर्याप्त रूप से विकसित हो रही है। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि;

* हिन्दी में आलोचना के विविध रूप प्रचलित हो रहे है,
* हिन्दी के विभिन्न आलोचकों ने हिन्दी आलोचना में पर्याप्त वृद्धि की है,
* हिन्दी में रेखाचित्र लेखक की समृद्ध परम्परा है, और
* हिन्दी के रेखाचित्र अत्यन्त रुचिकार हैं।

2.7.1 प्रस्तावना :

आज हिन्दी साहित्य निरन्तर नवीन रूपों में विकसित हो रहा है। गद्य की विविध नयी विधाओं में रेखाचित्र लेखन का विशिष्ट स्थान है। इस समय अनेकों रेखाचित्र लिखे जा चुके है। विदेशी साहित्य के अनुकरण में हिन्दी आलोचना की विभिन्न रूपों में विकसित हो रही है। बहुत से विद्वानों ने इस विधा के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों के कवियों एवं उनकी रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन करके नए निष्कर्ष स्थापित किए हैं। इस पाठ में आपको इनकी नवीन उपलब्धियों से परिचित कराया जाएगा।

2.7.2 हिन्दी आलोचना :

हिन्दी आलोचना का आधुनिक रूप वर्तमान काल में ही विकसित हुआ है। भारतेन्दु जी की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने साहित्य के प्रायः सभी अंगों का विकास प्रारम्भ किया और अन्य लेखकों से कराया। उन्होंने आलोचना का प्रारम्भ भी नए ढंग से किया। 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका में लाला श्रीनिवास दास रचित 'संयोगिता स्वयंवर' का नाट्य–दोष दिखाकर हिन्दी समालोचना का वास्तविक प्रारम्भ बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने किया। तभी से आलोचना का क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है। भारतेन्दु युग में पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ समीक्षा का सूत्रपात हुआ। इस युग में साहित्यिक पुस्तकों का परिचायक टिप्पणियों के रूप में आलोचनाएँ प्रकाशित होती थीं। इस युग के आलोचकों में स्वयं भारतेन्दु जी के अतिरिक्त प्रेमघन, बालकृष्ण

भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' सम्पादक के रूप में आलोचना को नई दिशा दी। द्विवेदी जी ने अपनी आलोचना में भारतीय रस सिद्धान्त को महत्व दिया, पर नवीनता की भी उपेक्षा नहीं की। उनकी आलोचना पद्धति गुण–दोष विवेचन तक ही सीमित थी। 'हिन्दी नवरत्न' की आलोचना द्विवेदी जी की गम्भीर आलोचना शैली का परिचय देती है। इसके अतिरिक्त 'कवि और कविता' जैसे विषयों पर लेख लिखकर उन्होंने सैद्धान्तिक समालोचना को भी आगे बढ़ाया।

द्विवेदी युग में मिश्रबन्धु का 'मिश्रबन्धु विनोद' और 'हिन्दी नवरत्न' द्वारा प्रथम बार ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक आलोचना का रूप प्रस्तुत हुआ। 'हिन्दी नवरत्न' में कवियों का श्रेणी विभाजन करते हुए मिश्रबन्धुओं ने देव को बिहारी से बड़ा सिद्ध किया। पं. पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी रचना' में बिहारी को शृंगार रस का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित किया। तद्नन्तर कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' पुस्तक द्वारा फिर देव को बिहारी से उत्कृष्ट बतलाया। लाला भगवानदीन ने 'बिहारी और देव' लिखकर इसका प्रतिवाद किया। इस प्रकार आचार्य शुक्ल के समीक्षा के क्षेत्र में उतरने से पहले तुलनात्मक आलोचना को बढ़ावा मिला।

जिस समय बिहारी और देव को लेकर हिन्दी समीक्षा जगत् में द्वन्द्व चल रहा था, आचार्य शुक्ल साहित्य का एक सुनिश्चित मानदण्ड एवं समीक्षा की एक विकसित पद्धति लेकर हिन्दी समीक्षा जगत् में अवतरित हुए। शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य को आलोचना के रूप में बहुमूल्य संपत्ति प्रदान की। वे हिन्दी के युग प्रवर्तक आलोचक हैं। उनके 'तुलसीदास' ग्रंथ से हिन्दी में प्रौढ़ आलोचना पद्धति का प्रारम्भ हुआ। शुक्ल जी ने आलोचना के शास्त्रीय पक्ष का विशद विवेचन करने के साथ–साथ सूर, तुलसी और जायसी की मार्मिक आलोचना द्वारा व्यावहारिक आलोचना का मार्ग भी प्रशस्त किया। शुक्ल जी की आलोचना में सूक्ष्म विश्लेषण और भावावेश दोनों का सुखद संगम है क्योंकि शुक्ल जी हृदय से कवि और मस्तिष्क से आलोचक थे।

शुक्ल जी के समकालीन समालोचकों में बाबू श्यामसुन्दर दास और पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी का नाम उल्लेखनीय है। हिन्दी में सैद्धान्तिक समीक्षा का प्रथम प्रौढ़ ग्रंथ 'साहित्यालोचन' श्यामसुन्दर दास जी के द्वारा प्रस्तुत हुआ। शुक्ल जी के समकालीन एवं परवर्ती आलोचकों में डॉ. गुलाबराय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी एवं डॉ. नगेन्द्र का विशिष्ट स्थान है।

बाबू गुलाबराय ने आलोचना के क्षेत्र में अत्यधिक ख्याति प्राप्त की है। आलोचक के रूप में उनकी सेवाएं बहुमूल्य हैं। आपने भारतीय रस सिद्धान्त और पाश्चात्य आलोचना पद्धति का अद्भुत समन्वय किया। हिन्दी नाट्य विमर्श, सिद्धांत और अध्ययन, काव्य के रूप, साहित्य समीक्षा, हिन्दी काव्य विमर्श – आपके आलोचनात्मक ग्रंथ हैं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी का आज के प्रमुख आलोचकों में प्रमुख स्थान है। आप ने हिन्दी आलोचना को एक उदार तथा मानवतावादी वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की है। द्विवेदी जी से पूर्व इतिहास लेखकों ने जहाँ इतिहास लेखक के लिए साहित्यिक दृष्टिकोण अपनाया, वहाँ इन्होंने सांस्कृतिक दृष्टिकोण ग्रहण किया। इसके साथ–साथ हिन्दी साहित्य की विभिन्न समस्याओं की ओर भी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। द्विवेदी जी का आलोचना साहित्य उनके गम्भीर चिन्तन एवं विस्तृत अध्ययन का परिचायक हैं हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदि काल, सूर साहित्य, कबीर, नाथ सम्प्रदाय, हिन्दी साहित्य–उद्म्झव और विकास, मध्यकालीन धर्म–साधना, भारतीय नाट्य परम्परा, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद आदि आपके समालोचनात्मक ग्रंथ हैं।

नन्ददुलारे वाजपेयी प्रतिभा सम्पन्न समीक्षकों में से हैं। इनका दृष्टिकोण समन्वयवादी है। ये नैतिकता और स्थूल उपयोगिता के आग्रही नहीं हैं, इनकी समीक्षा पद्धति व्याख्यात्मक और विवेचनात्मक है।

इनकी भाषा और शैली चुभती हुई और प्रभावोत्पादक है। इनकी कुछ रचनाएं ये हैं – आधुनिक साहित्य, नया साहित्य, नए प्रश्न, प्रेमचन्द, साहित्यिक विवेचन, महाकवि सूरदास।

डॉ. नगेन्द्र का दृष्टिकोण भी बहुत कुछ समन्वयवादी है। इन्होंने भारतीय साहित्यशास्त्र तथा पाश्चात्य साहित्यशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया है। इन्होंने अपने निबन्धों और भूमिकाओं में अपने आलोचक रूप को स्पष्ट किया है। 'रस–सिद्धान्त' नगेन्द्र के साहित्यिक चिन्तन की सर्वोत्तम उपलब्धि है। डॉ. नगेन्द्र की भाषा शैली शुद्ध और परिमार्जित तथा संस्कृत शब्दावली से युक्त है। सुमित्रानन्दन पन्त साकेत, भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा, महाकवि देव, रीतिकाव्य की भूमिका, रस सिद्धान्त आदि आपकी प्रसिद्ध समीक्षात्मक कृत्तियां हैं।

इनके अतिरिक्त डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र, आयार्च विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. मुन्शीराम शर्मा, आचार्य शिवपूजन सहाय, श्री नारायण चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पं. किशोरीदास वाजपेयी, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. जगन्नाथ शर्मा, विनय मोहन शर्मा, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, परशुराम चतुर्वेदी, चन्द्रबली पाण्डेय, कन्हैयालाल सहल, डॉ. रामविलास शर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक युग में विविध समीक्षा प्रणालियाँ का विकास हुआ है। डॉ. दीनदयाल गुप्त, डॉ. सत्येन्द्र, प्रभुदयाल मितल, परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. रमाकुमार वर्मा, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, डॉ. कन्हैया लाल सहल इत्यादि ने गवेषणात्मक आलोचना पद्धति को विकसित किया है। इन्होंने अपने शोध प्रबन्धों द्वारा हिन्दी साहित्य के विभिन्न पक्षों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण से समीक्षा करने वालों में डॉ. रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय आदि का नाम उल्लेखनीय है। इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय ने मनोविश्लेषणात्मक आलोचना प्रस्तुत की है। प्रभाववादी समालोचकों में शान्तिप्रिय द्विवेदी तथा भगवतशरण उपाध्याय के नाम उल्लेखनीय हैं।

अन्त में इतना ही कहा जा सकता है कि शुक्ल जी के समय से ही हिन्दी समालोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति हो रही है और हिन्दी समालोचना साहित्य का भण्डार काफी समृद्ध होता जा रहा है।

2.7.3 हिन्दी साहित्य में रेखा-चित्र :

महाकवि अकबर पर रचित पंडित पद्मसिंह शर्मा के रेखाचित्र को हिन्दी का प्रथम रेखाचित्र माना जाता है तथा श्रीराम शर्मा का 'बोलती प्रतिमा' हिन्दी का प्रथम रेखा चित्र सकलन है जिसमें लेखक की बारह रचनाएँ–बोलती हुई प्रतिमा, ठाकुर की आन, हरनामदास, वरदान, पीतांबर, वसीयत, फिरोजाबाद की काल कोठरी, अपराधी चंदा, रतना की अम्मा, इकाई का सौदा और इदन्नमम है। इस संकलन का प्रमुख रेखाचित्र, जिसके आधार पर इस संग्रह का नामकरण हुआ है, सर्वश्रेष्ठ तथा मार्मिक है। लेखक शिकार के लिए निकला है अतः एक सुहावनी कुटिया पर जाकर जिस रोगी का साक्षात्कार करता है उसकी दशा उसे चकित कर देती है। रोगी के मनोविज्ञान का लेखक ने बहुत अच्छा परिचय दिया है। लेखक ने बिना किसी सिद्धान्त की आड़ लिए और बिना इस घोषणा के वह एक नयी थ्योरी प्रस्तुत कर रहा है। उसने अत्यन्त स्वाभाविक रीति से यह प्रकट कर दिया है कि व्यक्ति के जो अंग कार्य नहीं कर पाते उनकी शक्ति अन्य अंगों में आ जाती है। इस संग्रह के अन्य रेखाचित्रों में ग्रामीण अंचल की समस्याओं, स्थितियों तथा महानताओं का चित्र कतिपय व्यक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त लेखक के रेखाचित्रों और संस्मरणों का एक अन्य संग्रह 'वे जीते कैसे हैं' में है, जिसमें चार रेखाचित्र 'बोलती प्रतिमा' के हैं तथा सोलह रचनाएँ नयी हैं। इसमें नेताओं से लेकर मजदूरों तक को स्वीकृति प्रदान की गई है। कुछ शिकार चित्र अद्भुत हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' को उपन्यास और रेखाचित्र दोनों के अंतर्गत स्वीकृति प्रदान की गई है। निराला के उपन्यासों की उपेक्षा इन रचनाओं की मौलिक भिन्नता इस बात से सिद्ध है कि इसमें निराला जी ने यथार्थ व्यक्तियों को अपनी लेखनी का उद्देश्य बनाया है। इन

रेखाचित्रों में निराला की भाषा लोक संस्कृति के तत्त्वों से ओत–प्रोत तथा मुहावरेदार है जिसमें गजब की शक्ति तथा स्वाभाविकता भरी हुई है। शब्द अनायास एवं सहज रूप में आगे–आगे चलते हैं। भाषा में न कृत्रिमता है और न प्रयत्नशीलता। रेखाचित्रकारों में महादेवी वर्मा का नाम यथेष्ट सम्मान का अधिकारी बन चुका है। उनकी तीन कृतियाँ अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ तथा पथ के साथी हैं। इन कृतियों में मुख्यतः उन्होंने अपनी जीवन–स्मृतियों को ही अनुस्यूत करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि जहाँ कहीं उनके सम्बन्ध की भावमयी स्थितियों के चित्रण हुए हैं, वहाँ हमें बौद्धिकता के स्थान पर भावपूर्ण करूणा के ही दर्शन होते हैं। जहाँ वे इस भाव–बंधन से मुक्ति प्राप्त कर सकी हैं वहाँ उनमें अधिक तटस्थाता, वस्तुपरकता एवं व्यंग्यमयी विश्लेषण–कुशलता के दर्शन हो जाते हैं। जहाँ वे तटस्थ रह सकी हैं, वही उनकी कला उच्च स्तरों का स्पर्श कर गई हैं।

रामवृक्ष शर्मा बेरीपुरी का जब प्रथम रेखाचित्र संग्रह 'लालतारा' प्रकाशित हुआ तो इस रचना से हिन्दी पाठकों पर विशेष प्रभाव न पड़ सका, लेकिन जब माटी की मूरते' छपी तो सर्वत्र एक तहलका मच गया। किसी ने उन्हें 'हाथी दाँत पर की तस्वीरें' कहा तो किसी ने 'सोने की तस्वीरें'। बेनीपुरी की लेखनी को 'जादू की छड़ी' की संज्ञा मिली और आज भी 'माटी की मूरते' का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। इसके उपरान्त दो संग्रह 'गेहूँ और गुलाब' तथा 'मील के पत्थर' और निकले, जिनमें कतिपय रेखाचित्र निश्चित ही उच्चतम स्तर के हैं। 'लालतारा' में पन्द्रह रेखाचित्र तथा एक एकांकी नाटक हैं। इसमें सभी चित्र सामाजिक अन्याय, शोषण, वर्गसंघर्ष, असमानता, समान अवसर की उपलब्धि, जमींदारी प्रथा के दुष्परिणाम, साहूकारों कीनाटकीय मनोवृति से उत्पन्न किसान की दयनीय स्थिति, क्रांतिकारी भावनाओं से सम्बन्धित है।''

'माटी की मूरतें' संग्रह के सभी पात्र ग्रामीण अंचल के हैं और उनकी ग्रामीण विशेषताएँ केवल ग्राम्य संस्कृति को प्रदर्शित करने के माध्यम नहीं है, वरन् उन्हें राष्ट्रीय और मानवीय संस्कृति परम्पराओं की कड़ी के रूप में एक दूसरे से जोड़कर एक इतिहास को प्रस्तुत करने का प्रयास है। 'गेहूँ और गुलाब' संग्रह में बेनीपुरी ने प्रतीकात्मकता, स्थिति–चित्रण, प्राकृतिक दृश्य, पक्षियों, अदृश्य पदार्थों अथवा मनोदशाओं के चित्रों द्वारा अपने कथ्य पर विशेष बल दिया है। इस संग्रह में गेहूँ और गुलाब, जहाज जा रहा है, चरवाहा, फुलसुँघनी, नथुनियाँ आदि चित्रों में उन्होंने विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रश्नों को उभारा है। 'मील का पत्थर' में पन्द्रह रेखाचित्र संकलित हैं। इनमें गाँधी, विनोबा और राजेन्द्र बाबू जैसे नेताओं को छोड़कर शेष सभी साहित्यकारों या समस्याओं से संबंधित हैं। बेरीपुरी की परिपक्व रचना 'मील का पत्थर' है क्योंकि उसमें दृष्टिकोण की जो प्रौढ़ता मिलती है वह अन्य रचनाओं में नहीं हैं। 'माटी की मूरते' विचारात्मकता या प्रौढ़ता के लिए प्रसिद्ध नहीं हैं, वरन् उनमें चित्रात्मकता, चित्रण की सहजता सामान्य मानवों के सांगोपांग चित्र एवं विचित्र प्रकार के मनोसंघर्षो के बहुआयामीय आख्यान हैं। 'गेहूँ और गुलाब' में बेनीपुरी की शिल्प और विषय बदले हैं। उन्होंने नवीन प्रयोग किए हैं और उनमें वे अत्यधिक सफल भी हुए हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त के रेखाचित्रों का संग्रह 'रेखाचित्र' है। इनकी रचनाओं को पाँच शीर्षकों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग का नाम 'कुमायूँ के अंचल' द्वितीय भाग 'स्केच' में समाज के उपेक्षित वर्ग का चित्रण है। तृतीय भाग 'पुरनी स्मृतियाँ' के अन्तर्गत लेखक ने अपना संक्षिप्त जीवन चरित्र परक स्मृति चित्र दिया है। बचपन से लेकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय की नौकरी के बीच उसे जिन–जिन कड़ियों से गुजरना पड़ा है, उसका बहिरंग चित्रण इनमें से झांकता है।

चतुर्थ भाग 'नए स्केच' शीर्षक के अन्तर्गत सोलह रेखाचित्र आते हैं। इनमें निम्न मध्यवर्ग तथा मध्यवर्ग के अनेक पात्रों की कलई खोली गई है और बताया गया है कि वे किस प्रकार अयथार्थवादी एवं आडम्बरयुक्त जीवन जीकर अपने को और दूसरों को धोखा देते हैं। पाँचवें खण्ड का शीर्षक 'रेखाचित्र' है जो भावप्रवणता के

कारण अत्यन्त आकर्षक है।

देवेन्द्र सत्यार्थी का भावात्मक रेखाचित्रकारों में उच्च स्थान है। 'रेखाएँ बोल उठी' तथा अन्य संग्रहों में आए रेखचित्रों में उनका मुख्य ध्यान भावों तथा तथ्यों पर केन्द्रित हो गया लगता है। भावात्मक रेखाचित्र कहीं न कहीं आत्मानुभूतिपरक होता है। यदि वह सीधे–सीधे आत्मकथात्मक शैली में अपनी बात नहीं कह पाएगा तो उपलक्षण पद्धति का प्रयोग करेगा, कथा शिलप–गत अन्य अनेक नवीन विधियाँ अपनाएगा, किन्तु उसे अपनी बात ही कहनी होगी। वहीं वह दूसरों को समेटने की चेष्टा करेगा उसे अपनी परिधि का विस्तार ही नहीं करना होगा, वरन् विधि भी बदलनी होगी और तथ्य–निरूपण को किसी न किसी सीमा तक स्वीकृति प्रदान करती होगी। सत्यार्थी व्यक्ति प्रधान दृष्टिकोण रखते हैं। वे समाज के भीतर रहते हुए भी तथा सामाजिक अनुभवों एवं लोकगीतों आदि का संकलन करते समय भी आत्मरति से युक्त दृष्टिगोचर होते हैं।

बनारसीदास चतुर्वेदी के अब तक तीन संग्रह रेखाचित्र, हमारे आराध्य और संस्मरण शीर्षकों से प्रकाशित हो चुके हैं। इन संकलनों में जीवन–चरित्र, संस्मरण और रेखाचित्रों के अनेक रूप संग्रहीत हैं। इनके इन संग्रहों में 'रेखाचित्र' ही विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उसी में रेखाचित्रों के उत्तम उदाहरण मिलते हैं। 'हमारे आराध्य' में प्रोत्साहित करने वाली जीवनियाँ हैं। इन लोगों के निजी संपर्क में लेखक तो नहीं आया है, किन्तु उसने ग्रंथों की सहायता से इन व्यक्तियों का सत्संग अवश्य किया है। 'संस्मरण' में संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का आधिक्य है। चतुर्वेदी की सबसे सशक्त रचना 'रेखाचित्र' है जिसमें चालीस रेखाचित्र दिए हैं। इसके भी दो भाग हैं। प्रथम भाग में माननीय व्यक्तियों के तथा द्वितीय भाग में सामान्य व्यक्तियों के दर्शन होते हैं। चतुर्वेदी के वे ही रेखाचित्र श्रेष्ठ हैं जिसमें सामान्यों को आधार बनाकर उनकी जीवन व्यापिनी करुणा को मूर्तिमता प्रदान की गई है।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 'जिन्दगी मुस्कराई' संग्रह में जिस प्रकार अपने पात्रों के हृदय का सूक्ष्म चित्र देकर उनके जीवन के प्रति हमारी दृष्टि को अधिक गहराई प्रदान हैं, यह श्लाघ्य है।

डॉ. विनयमोहन शर्मा के 'रेखा और रंग' शीर्षक रेखाचित्र संकलन में चौदह रेखाचित्र हैं। इनमें पूसी बिल्ली से लेकर वृक्ष, चिड़िया, थर्डक्लास का डिब्बा तक के विषय हैं।

विष्णु प्रभाकर के 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ' तथा 'हँसते निर्झर दहकती भट्टी' में रेखाचित्रात्मक रचनाएँ हैं। इनमें रेखाचित्रों के अतिरिक्त संस्मरण और यात्रा–वृतान्त भी हैं। विष्णु प्रभाकर अपने रेखाचित्रों को सामान्यतः प्राकृतिक चित्रण से प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि उन्हें पाठकों को अपने विषय की ओर आकृष्ट करने का यही सबसे उचित माध्यम प्रतीत होता है। विष्णु प्रभाकर घटनाओं और स्थितियों को परस्पर जोड़कर देखने के आदी हैं। वे सामाजिक स्थितियों के पीछे निहित विषमताओं को सामने लाने में दक्ष हैं।

डॉ. नगेन्द्र के 'चेतना के बिम्ब' में दस रेखाचित्र–संस्मरण हैं। इन चित्रों में विश्लेषण का प्राधान्य होने के कारण तटस्थता का गुण अपनी सहज छटा बखूबी दिखा चुका है। डॉ. नगेन्द्र, आलोचक शास्त्रकार और कवि के समन्वय की निष्मति है, अतः उनके रेखाचित्रों में हार्दिकता का आधिक्य कहीं नहीं है, वरन् कहीं–कहीं तो इसका अभाव भी अनुभव होता है। उनके वर्णनों में स्पष्टता, खंड–खंड करके बात को समझने की क्षमता इतनी उग्र है कि लगता है उनका अध्यापक रेखाचित्रकार पर हावी हो बैठा है। उनकी यह विशेषता सभी रेखाचित्रों में है।

अज्ञेय ने 'एक बूँद सहसा उठली' में अनेक उत्कृष्ट रेखाचित्र दिए हैं। स्विट्जरलैंड जहाँ सबका मन रमण करने लगता है, कवि अज्ञेव अधिक तटस्थ और अंतर्लीन हो जाते हैं। उन्होंने अपनी इस मनोदशा को मूर्तिमान् ही नहीं किया है, वरन् स्थिति से तटस्था रहकर उसे बताने का भी प्रयास किया है। अज्ञेय की दृष्टि दृश्य और अपने अंतर्मन पर एक साथ पड़ रही है। वे देश या दृश्य को केवल एक स्थिति मानकर नहीं चल

पाते, वे उसे एक प्रवाहमान धारा के रूप में देखने के आदी हैं, अतः दृश्य या व्यक्ति के माध्यम से वे हमें ऐसा कुछ दे जाते हैं जो अन्यों के लिए अजूबा बना रहता है। अज्ञेय आज के प्रसाद हैं। उन्होंने सब कुछ लिखा है। अज्ञेय गहन अनुभूतियों के लेखक हैं। वे प्रकृति और गहन स्थलों की शरण में संभवतः अपने उन अनचीन्हे व्यक्तित्व–आयामों के साक्षात्कार के लिए जाते हैं, जिनका परिचय सामान्य जीवन में असंभव बना रहता है। सामान्यतः देखने पर उनका मन खुलकर उन्हीं दिशाओं में भ्रमण करता चलता है जिनकी उसे खूब पहचान है, लेकिन विशेषतः वे अगम्य स्थितियों तक पहुंचते रहे हैं।

निर्मल वर्मा का 'चीड़ों पर चाँदनी' यात्रा वृत्तन्त न्र होकर स्मृतिखण्डों का एलबम है जिसमें अनेक तारों जैसी यादें सर्वत्र झलमला रही हैं। वर्मा ने आइसलैण्ड के एक किसान परिवार की संस्कृतिक स्थिति का जो चित्र दिया है, वह उनकी गहरी पैठ और सांस्कृतिक सूझ को ही प्रकट नहीं करता वरन् अन्य यूरोपीय देशों की सांस्कृतिक स्थिति को भी तुला कर रख देता है। निर्मल वर्मा अनुभूति के चरम क्षणों में भी सामाजिकता के सूत्र जोड़े रखते हैं। विद्यानिवास मिश्र दो निबंधों के संकलन ऐसे निकले हैं जिनमें कतिपय रचनाएँ रेखाचित्र की विशेषताओं से युक्त हैं। वे भारतीय संस्कृति के ऐसे समर्थ आख्याता तथ चितेरे हैं कि संपूर्ण अतीत अपनी विशेषताओं के सहित सामने आ उपस्थिति होता है। 'अशोक के फूल' में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसी कोटि के कुछ रेखाचित्र दिए हैं, किन्तु उनकी संख्या इतनी नहीं है कि उनका स्वतंत्र रूप से विवेचन किया जा सके। बाबू गुलाबराय ने 'मेरी असफलताएँ' में कई रेखाचित्र दिए हैं। उनका प्रसिद्ध रेखाचित्र उनके नापिताचार्य पर लिखा गया है। गुलाबराय हास्य और कभी–कभी मीठा व्यंग्य करने में अपना सानी नहीं रखते, अतः उनकी चित्रण शैली अलग से पहचान ली जाती है। शान्ति प्रिय द्विवेदी ने 'पथ चिन्ह' में जो भावुकता–पूर्ण रेखाचित्र लिखे हैं, उन्हें भी आदर के साथ याद किया जाता है। प्रेमनारायण टंडन ने 'रेखाचित्र' के अन्तर्गत 'कूकी' का अच्छा चित्र दिया है। हिन्दी रेखाचित्र का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

2.7.4 सारांश :

इस पाठ में हिन्दी आलोचना एवं हिन्दी की नवीन विधा रेखाचित्र का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह दोनों विधाएं आज विशेष रूप से विकसित हो रही है और इनसे हिन्दी साहित्य के भंडार में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

2.7.5 शब्दावली :

सूत्रपात	–	आरंभ
विशद	–	विस्तृत
ख्याति	–	प्रसिद्धि
थ्योरी	–	सिद्धान्त
यपेष्ट	–	पर्याप्त

2.7.6 बोध प्रश्न :

1. हिन्दी आलोचना का आरंभ कब से हुआ ?
2. हिन्दी के प्रमुख आलोचक कौन से हैं ?
3. रेखाचित्र किस कहते हैं ?
4. हिन्दी के प्रसिद्ध रेखा चित्र कौन से हैं ?
5. महादेवी वर्मा की रचना 'अतीत के चलचित्र' में किस प्रकार के रेखाचित्र हैं ?

पाठ संख्या– 2.7 (B)

आत्मकथा का विकास

जब कोई लेखक अपने ही जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, तब जीवनी का वह रूप आत्मकथा कहलाता है। लेखक उसमें अपना–आपा अपने शब्दों में में ही प्रस्तुत करता है। आत्मकथा का लेखक समाज का सामान्यन होकर समाज का प्रतिष्ठिन व्यक्ति होता है।

हिन्दी के प्राचीन साहित्य में आत्मकथात्म्क सामग्री इधर उधर बिखरी मिल जाती है। आत्मकथा का सुव्यवस्थित तथा सुनिश्चित रूप आधुनिक काल में ही उपलब्ध होता है। साहित्य की अन्य विद्याओं की भांति आत्मकथा विकास भी आधुनिक युग की देन है। हिन्दी आत्म कथा के विकास को विभिन्न भागों में बांटा जा सकता है–

(1) **प्रारम्भिक युग** (सन् 1810 से 1927) – गद्य की अन्य विद्याओं के साथ आत्मकथा का आरम्भ भी भारतेन्दु युग में हुआ। भारतेन्दु रचित 'कुछ आपबीती कुछ जग बीती' में आत्मकथा के कुछ तत्त्व मिलते हैं। भारतेन्दु के सहयोगी लेखकों में राधा चरण गोस्वामी की 'मेरा संक्षिप्त जीवन', लाला लाजपत राय की 'आत्मकथा' परमानन्दकृत 'कालेपानी की कारावास कहानी' श्री अम्बिका दत्त ब्यास रचित 'निजवृतान्त' भी आत्मकथा ही है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में राजनेतिक गतिविधियां तेज़ हुई और समाज में क्रान्ति हुई। स्वामी श्रद्धानन्द की 'कल्याण मार्ग का पथिक' तथा सत्यानन्द की 'मुझ में दैवी जीवन का विकास' उल्लेखनीय आत्मकथाएं हैं। इस युग की आत्मकथाओं में समाजिक जागृति तथा नये समाज के निर्माण की ललक दिखाई पड़ती है।

(2) **विकास युग** (1928 से 1947)– इस शताब्दी में अनेक राजनैतिक महापुरुशों ने नवजागरण का संदेश–िाारतीय समाज को दिया। अपनी आत्मकथाएं लिख कर परोक्ष रूप से समाज को संदेश दिया। गुजराती में लिखी महात्मा गांधी की आत्मकथा का अनुवाद श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने किया। पं. जवाहराल नेहरू की आत्मकथा 'मेरी कहानी' (1939) का अनुवाद हिन्दी मे किया गया। नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की आत्मकथा का हिन्दी अनुवाद 'तरुण के स्वप्न' (1935) नाम से प्रकाशित हुई। डा. राधाकृष्णन की आत्मथा का अनुवाद 'सत्य की खोज' (1940) प्रकाशित हुई।

इस काल की अन्य उल्लेखनीय आत्मकथाएं हैं–प्रेमचन्द रचित 'मेरा जीवन', महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'मेरी जीवन रेखा' निराला की 'निराला की आत्मकथा', मैथिलीशरण गुप्त की 'अपने विषय में' राहुल सांस्कृत्यापन रचित 'मेरी जीवन यात्रा' तथा गुलाब राय की 'मेरी असफलताएं' हैं।

इन आत्मकथाओं की विशेषता यह है कि इन में जीवन का सर्वांगीण विकास प्रस्तुत किया गया है। तथा निष्पक्षता औश्र तटस्थता इनका विशेष गुण हैं। इसके अतिरिक्त 'हंस' पत्रिका के आत्मकथा अंक में आत्मकथाएं प्रस्तुत की गई। जिनमें जयशंकर प्रसाद की 'आत्मकथा' रामचन्द्र शुक्ल की 'प्रेमधन की छाया में' विनोदशंकर व्यास की 'मैं' रायकृष्णदास की 'अतीत की साधना' महत्त्वपूर्ण हैं।

(3) स्वातन्त्रोत्तर युग–(सन् 1947 से अब तक)–आत्म कथा साहित्य का प्रौढ़ रूप इस युग में मिलता है। हिन्दी में लिखी प्रथम राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' में उनके त्याग और तपस्यामय जीवन की कहानी है। भाषा शैली सरल और सहज है। श्री कन्हैरूालाल माणिक लाल मुंशी की आत्मकथा कई भागों में प्रकाशित हुई। डा. पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश' तथा मंजुला वीरदेव ने इनका अनुवाद किया है। भाषा शैली अत्यन्त रोचक है। भवानी दयाल सन्यासी ने अधिकतर दक्षिणी अफ्रीका में कार्य थ्कया है अतः उनकी आत्मकथा 'प्रवासी की आत्मकथा' शीर्षक लिए प्रकाशित हुई। स्वामी परिव्राजक की आत्मकथा 'स्वतन्त्रता की खोज' जीवन का अच्छा विवरण प्रस्तुत करती है।

सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने वाले साहित्यकार वियोगी हरि ने 'मेरा जीवन प्रवाह' (1947) रचना लिखी। जिसमें राजनैतिक गतिविधियों की भी झलक है। रामवृक्ष बेनीपुरी रचित 'जंजीरें और दीवारें' में पराधीन भारत की परिस्थितियों का चित्रण है। श्यामसुन्दरदास की 'मेरी आत्मकहानी' में उनका भाषा प्रेम और साहित्य प्रेम दृष्टि गोचर होता है।

यशपाल जी की 'सिंहावलोकन' (1945) में एक राजनैतिक क्रान्तिकारी के जीवन के संघर्ष की कहानी है क्रांतिकारियों की आत्मकथाओं में रामप्रसाद बिस्मिल जैसा आत्मचरित अन्यत्र दुर्लभ है।

संस्मरणात्मक शैली में शान्तिप्रिय द्विवेदी की आत्मकथा 'परिव्राजक की पूजा' में साहित्यिक गतिविधियों की चर्चा है। अन्य साहित्यिक कृतियों में सेठ गोबिन्द दास की रचना आत्मनिरीक्षण (1947) तीन भागों में विभाजित है। जिसमें पारिवारिक तथा राजनैतिक जीवन की झांकी प्रस्तुत की है। जमनालाल बजाज की धर्मपत्नी जानकी देवी बजाज ने 'मेरी जीवन गाथा' शीर्षक से संक्षिप्त आत्मकथा लिखी है।

प्रसिद्ध निबन्धकार पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी की 'मेरी अपनी कथा', उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री की आत्मकहानी (1943) तथा उग्र की 'अपनी खबर' वृन्दावन लाल वर्मा की 'अपनी

कहानी' उल्लेखनीय कृतियां हैं। विनोद शंकर व्यास ने अपनी रचना 'उलझी स्मृतियां' में व्यक्तिगत उलझनों के साथ तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों का भी चित्रण किया है।

उत्यन्त रोचक शैली में लिखी देवेन्द्र सत्यार्थी की आत्मकथा 'चांद सूरज के वीरान' में चलगी हुई। का प्रयोग है तथा पंजाबी की झलक दिखाई देती है। सन्तराम की 'मेरे जीवन के अनुभव' में जाति–पारिकार डटकर विरोध किया है। उपेन्द्र नाथ 'अश्क' की 'ज्यादा अपनी कम परायी' में भी व्यक्तिगत संस्मरणोकी भरमार है।

कृश्नचन्दर की 'आधेसफर की अधूरी कहानी' भी उल्लेखनीय कृति है। नरदेव शास्त्री की 'आत्मकथा' तो पांच भागों में प्रकाशित हुई है। सुप्रसिद्ध कवि डा. बच्चन की आत्मकथा एक महत्वपूर्ण कड़ी है। उन्की आत्मकथा अनेक भागों में बंटी है–'क्या भूलं क्या याद करूं', 'नीड़ का निर्माण फिर' 'बसेरे से दूर' 'दशद्वार से सोपान तक'। इस आत्मकथा में ततयुगीन धाराओं के अतिरिक्त साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता स्वाधीनता आन्दोलन आदि सभी कुछ है। भाषा प्रवाह पूर्ण तथा शैली सशक्ल है।

अनुदित आत्मकथाएं–अन्य भाषाओं में लिखी गई अनेक आत्मकथाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ जिनमें से कुछ लोकप्रिय हैं–वेद मेहता की 'मेरा जीवन संघर्ष' मौलाना आज़ाद की 'आज़ादी की कहानी' दुर्गा खोटे की 'मैं दुर्गा खोटे' जोश मलीहाबादी की 'यादों की बारात'। यह आत्मकथा उर्दु हिन्दी साहित्य का गौरवहै। जीवन का पूरा उतार चढ़ाव आकर्षक शैली में वर्णित है। अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट' में जीवन का इमानदारी से चित्रण है।

इस विधा को समाज सुधारकों, राजनीतियों तथा साहित्यकारों सभी ने योगदान दिया। इसके माध्यम से लेखकों के निजी जीवन का लेखा जोखा मिल जाता है। संख्या में चाहे कम हों परन्तु कला की दृष्टि से किस तरह भी कम नहीं।

पाठ संख्याः 2.8 **लेखक : श्री निर्मल सिंह**

निबन्ध की परिभाषा एवं तत्त्व

पाठ की रूपरेखा

2.8.0 उद्देश्य
2.8.1 प्रस्तावना
2.8.2 हिन्दी निबन्ध की परिभाषा
2.8.2.1हिन्दी निबन्ध के तत्व
2.8.2.2हिन्दी निबन्ध के गुण
2.8.3 सारांश
2.8.4 शब्दावली
2.8.5 बोध प्रश्न।

2.8.0 उद्देश्य :

इस पाठ में आपको हिन्दी निबन्ध और उसके तत्वों से परिचित कराया जाएगा। हिन्दी में निबन्ध लेखन विदेशी साहित्य की देन है। इसमें लेखक किसी विषय के प्रति अपने विचारों को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करता है। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि;

* निबन्ध एक निश्चित आकार की कलात्मक रचना होता है,
* निबन्ध में लेखक किसी विषय के प्रति अपने विचारों को प्रस्तुत करता है,
* निबन्ध लेखन के निश्चित तत्त्व होते है, और
* हिन्दी में निबन्ध साहित्य पूर्ण विकसित रूप में प्राप्त है।

2.8.1 प्रस्तावना :

आधुनिक काल में हिन्दी निबन्ध पूर्ण विकसित एवं समृद्ध विधा है। इसमें किसी एक विषय पर लेखक का व्यक्तिगत विश्लेषण प्राप्त होता है। यह न कोई इतिहास है और न ही कोई आलोचनात्मक विवरण। इसमें लेखक के व्यक्तित्व का सहज प्रकाशन होता है। लेखक अपने विचारों को गठित रूप में सजा कर पाठक के सामने रखता है। यह छोटे आकार की गद्य–रचना होती है जिसकी एक निश्चित मर्यादा होती है और यह कुछ आधारित तत्वों में निहित होती है।

2.8.2 हिन्दी निबन्ध की परिभाषा :

हिन्दी में प्रारम्भिक गद्य ब्रज भाषा के आश्रय में विकास पाता रहा। सत्रहवीं शताब्दी में श्री वल्लभाचार्य के पौत्र श्री गोकुल नाथ जी गोसाई की ब्रज भाषा में निम्नलिखित गद्य की पुस्तकें उपलब्ध हैं – 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता'। संवत् 1630 के लगभग नाभादास जी ने 'अष्टयाम' नामक गद्य पुस्तक की रचना ब्रज भाषा में की। इसके पश्चात् बैकुण्ठ गणि शुक्ल ने 1680 के आस–पास 'अगहन माहात्म्य' और 'बैसाख महात्म्य' नामक पुस्तकों का सृजन किया जो ब्रजभाषा में लिखी गद्य रचनाएँ हैं। संवत् 1760 के लगभग 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना हुई। यह भी ब्रज भाषा में लिखित गद्य

रचना है। इनके अतिरिक्त भी ब्रज भाषा गद्य की एक लम्बी परम्परा मिलती है। यह परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी तक बराबर चलती रही।

खड़ी बोली गद्य के आदि लेखक गंग कवि कहे जाते हैं। इन द्वारा लिखित पुस्तक 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' जिसका रचनाकाल संवत् 1627 है, ब्रज मिश्रित खड़ी बोली में लिखी गई है। इसकी भाषा अपरिमार्जित और अपरिष्कृत है। गंग के लगभग पौने दो सौ वर्ष पश्चात् खड़ी बोली गद्य के दो लेखक हुए। संवत् 1788 में रामप्रसाद 'निरंजनी' ने 'भाषा योग–वाशिष्ठ' की रचना की। दूसरे दौलत राम जिन्होंने संवत् 1798 में 'ब्रह्म पुराण' का खड़ी बोली में अनुवाद किया। रामप्रसाद 'निरंजनी' खड़ी बोली के ऐसे प्रथम लेखक हैं, जिन्होंने प्रौढ़, परिष्कृत और शुद्ध खड़ी बोली में ग्रन्थ लिख कर एक नवीन आदर्श अन्य लेखकों के सामने उपस्थित किया। दौलत राम की भाषा विशेष परिष्कृत तो नहीं, तथापि खड़ी बोली गद्य के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में व्यावहारिक भाषा खड़ी बोली को साहित्यिक रूप देने का प्रयत्न हुआ। खड़ी बोली में व्यवस्थित गद्य लिखने का श्रेय इन चार महानुभावों को है – मुंशी सदासुखलाल, ईशा अल्ला खाँ, सदल मिश्र, लल्लू लाल। इनमें मुंशी सदासुखलाल और इंशा अल्ला खाँ ने स्वान्तः सुखाय और लल्लू लाल तथा सदल मिश्र ने फोर्ट विलियम कालेज की छत्रछाया में अंग्रेज अफसरों की प्रेरणा से लिखा है। इनका कार्य संवत् 1917 के लगभग आरम्भ हुआ। चारों महानुभावों के समकालीन होने पर भी उनकी भाषा का अन्तर स्पष्ट देखा जा सकता है। सदासुखलाल की भाषा कुछ पण्डिताऊपन लिए हुए है। लल्लू लाल की भाषा में ब्रज भाषा के पुट का आधिक्य है। इंशा अल्ला खाँ की भाषा शुद्ध हिन्दी होते हुए भी फारसी से प्रभावित है। सदल मिश्र की भाषा पर बिहारी का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इन चारों महानुभावों में मुशी सदासुखलाल ही ऐसे गद्य लेखक हैं जिनमें आधुनिक खड़ी बोली के दर्शन होते हैं। व्यवहारोपयोगी भी उन्हीं की भाषा अधिक है और सबसे पहले लिखना भी उन्होंने आरम्भ किया। अतः मुंशी सदासुखलाल को खड़ी बोली गद्य का प्रवर्तक समझना चाहिए।

खड़ी बोली गद्य के निर्माण में ईसाई प्रचारकों का भी विशेष हाथ है। उन्होंने अपने धर्म प्रचार के लिए खड़ी बोली को अपनाया। कैरे नामक पादरी ने 'बाइबल' का खड़ी बोली में अनुवाद किया। आगरा में इन्होंने 'स्कूल बुक्स सोसायटी' नामक एक संस्था की स्थापना की जहां से अनेक शिक्षोपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। यद्यपि इन ईसाई प्रचारकों का उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार–प्रसार था परन्तु इनके इन प्रयत्नों से हिन्दी गद्य को बढ़ावा मिला।

ईसाईयों की भाँति आर्य समाज, ब्रह्म समाज तथा सनातन धर्म ने भी अपने सांस्कृतिक आन्दोलनों को तीव्रता प्रदान करने के लिए खड़ी बोली गद्य का प्रयोग किया। स्वामी दयानन्द ने गुजराती होते हुए भी हिन्दी में ही अपने ग्रन्थों की रचना की। सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, वेदान्ग प्रकाश, गौ करुणानिधि, ऋग्वेददादि भाष्य भूमिका आदि स्वामी दयानन्द की खड़ी बोली की रचनाएं हैं। ब्रह्म समाज के प्रवर्त्तक राजा राममोहन राय ने सर्वप्रथम वेदान्त सूत्रों के भाष्य का हिन्दी अनुवाद किया। इधर सनातन धर्म के नेता पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी ने धर्म प्रचार के लिए कुछ गद्य ग्रन्थों का निर्माण किया जिनकी भाषा परिमार्जित और प्रवाहपूर्ण है। छापेखाने के प्रचलन और पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से भी हिन्दी खड़ी बोली के गद्य साहित्य को पर्याप्त सहायता मिली।

इसी समय एक ओर जहाँ हिन्दी गद्य का निर्माण कार्य चल रहा था, वहाँ दूसरी ओर सर सैयद अहमद तथा कुछ शासनाधिकारियों द्वारा हिन्दी के विकास में अनेक बाधाएं उपस्थित की जा रही थी। धीरे–धीरे स्कूलों तथा सरकारी कार्यालयों से हिन्दी को हटाया जा रहा था। उर्दू और अंग्रेजी के बढते हुए

प्रचार के समय हिन्दी के सौभाग्य से राजा शिव प्रसाद को शिक्षा विभाग में स्थान मिल गया। उनके प्रयत्न से ही स्कूलों में हिन्दी का प्रवेश हुआ। उन दिनों हिन्दी में पाठ्य पुस्तकों का अभाव था। राजा साहब ने इस अभाव की पूर्ति स्वयं भी करने का प्रयत्न किया तथा दूसरों को भी प्रोत्साहित किया। पहले पहल राजा शिवप्रसाद विशुद्ध हिन्दी भाषा के पक्षपाती थे। किन्तु जब उन्होंने अंग्रेजी की भाषा नीति को देखा, तो हिन्दी रक्षा की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने मध्य वर्ग ग्रहण कर लिया। उनका वास्तविक मंतव्य सरकार और मुसलमानों की मिली भगत के परिणामस्वरूप हिन्दी पर होने वाले उनके आघातों से उसकी रक्षा करना था। उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना कर हिन्दी भाषा और उसके गद्य को समृद्ध किया। इनकी रचनाओं में से राजा भोज का सपना, मानव धर्म सार, इतिहास तिमिर नाटक, आलसियों का कोड़ा, योग वशिष्ठ, उपनिषद् सार आदि प्रमुख हैं। इन्होंने 'बनारस' तथा 'सुधाकर' नामक दो पत्रों का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। दूसरे राजा लक्ष्मणप्रसाद सिंह खुले रूप से विशुद्ध हिन्दी के कट्टर समर्थक थे। वे हिन्दी उर्दू को अलग–अलग बोली मानते थे। उन्होंने कालिदास के रघुवंश, मेघदूत और शकुन्तला के सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किये। इस प्रकार इन दो राजाओं के प्रयत्नों से हिन्दी गद्य का स्वरूप परिमार्जित हुआ, उसके विकास में पर्याप्त सहायता मिली।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग से पूर्व भी हिन्दी गद्य की एक अनियमित सी परम्परा विद्यमान थी। भारतेन्दु के गद्य साहित्य के क्षेत्र में अवतरित होते ही सभी दिशाओं में हिन्दी गद्य के प्रसार का श्रीगणेश हो गया। भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य का संस्कार करके उसका स्वरूप स्थिर किया, व्यंग्य और हास्य द्वारा उसे सजीवता प्रदान की तथा उसे भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाने का भरपूर प्रयत्न किया, इसलिए आप हिन्दी गद्य के प्रवर्तक माने जाते हैं। आपने स्वयं भी लिखा और अपने साथियों को भी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। आपने पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन भी किया। इस युग में हिन्दी गद्य की बहुमुखी प्रगति हुई। उपन्यास, नाटक, कहानी, निबन्ध, समालोचना, इतिहास, जीवनी आदि विभिन्न विधाओं द्वारा उसे तेजस्वी रूप मिला। भारतेन्दु काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्रीनिवास दास, अम्बिका दत्त व्यास तथा राधाचरण गोस्वामी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु हरिशचन्द्र के पश्चात् हिन्दी गद्य को परिमार्जित और परिष्कृत रूप प्रदान करने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। भाषा की शुद्धता पर द्विवेदी जी ने बड़ा बल दिया। इसके साथ ही शिक्षित समाज को हिन्दी गद्य की विविधता से परिचित कराया। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी गद्य की विविधता से परिचित कराया। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी गद्य को व्याकरण–सम्मत रूप प्रदान करने का भरसक प्रयत्न किया। सरस्वती पत्रिका न होकर ऐसा लगता है कि स्वयं में एक संस्था थी। द्विवेदी जी सरल भाषा लिखने के पक्ष में थे। प्रचलित शब्दों का प्रयोग करने में वे आगे थे चाहे वे अंग्रेजी के हों अथवा उर्दू–फारसी के। उनका उद्देश्य भाषा को सहज और सुबोध बनाना था। इस विषय में उनके विचार उल्लेखनीय हैं – 'हिन्दी में इस समय एक बड़ा भारी दोष यह घुस रहा है कि उसमें अनावश्यक संस्कृत शब्दों की भरमार की जाती है.... संस्कृत के कठिन तत्सम शब्द क्यों लिखे जायें? 'घर' क्या बुरा है जो गृह लिख जाये ? 'ऊँचा' शब्द क्या बुरा है जो उच्च लिखा जाये ?' इस प्रकार द्विवेदी जी सद्प्रयासों से हिन्दी गद्य का स्वरूप व्याकरण–सम्मत, दोष रहित, शुद्ध और परिष्कृत रूप प्राप्त कर गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और जयशंकर प्रसाद द्वारा हिन्दी गद्य को प्रौढ़ता मिली। इनके प्रयत्नों से हिन्दी गद्य इतना सम्पन्न हो गया कि गम्भीर से गम्भीर विषयों की अभिव्यंजना विभिन्न शैलियों में उसमें सम्भव हो सकी। हिन्दी गद्य में संगठन और प्रांजलता का समावेश हो गया। नवीन शब्दों को बढ़ाने की प्रवृत्ति ने भाषा के शब्द भण्डार को भर दिया। प्रेमचन्द जी के हिन्दी क्षेत्र में अवतरित होते ही हिन्दी गद्य की भाषा को और

शक्ति मिली। प्रेमचन्द अपनी भाषा शैली के लिए सदैव याद किये जायेंगे। उनकी भाषा सीधी–सादी, मंजी हुई, प्रौढ़ तथा प्रवाहपूर्ण है। उनकी भाषा पात्रानुकूल है। कथोपकथन के समय उनकी भाषा में नाटकीय सौन्दर्य आ जाता है। वृन्दावनलाल वर्मा, इलाचन्द्र जोशी जैसे उपन्यासकार तथा बाबू श्यामसुन्दर दास जैसे समालोचक भी इसी समयकी देन हैं। सारांश यह है कि द्विवेदी युग में हिन्दी गद्य अपनी प्रौढ़ता को प्राप्त कर गया। विषय की अनेकरूपता और साहित्यिक रूपों की दृष्टि से इस काल का गद्य हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। निबन्ध, कहानी, उपन्यास, नाटक, समालोचना आदि का तो इस युग में पूर्ण विकास हुआ ही, साथ ही गद्य, काव्य, संस्मरण, रेखाचित्र, व्यंग्य चित्र, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, इंटरव्यू आदि नवीन और सप्राण विधाओं का भी जन्म हुआ।

इसके पश्चात् से हिन्दी गद्य निरन्तर पल्लवित और पुष्पित होता हुआ अपनी सुगन्ध और सुषमा बिखराता अनेक रूपों में विकसित हो रहा है।

2.8.2.1 हिन्दी निबन्ध के तत्त्व :

कविता के सम्बन्ध हृदय से और गद्य का सम्बन्ध मस्तिष्क से माना गया है। हृदय से सम्बन्धित होने के कारण कविता में रागात्मिकता का गुण विद्यमान रहता है। मस्तिष्क की उपज होने के कारण गद्य में बौद्धिकता की प्रधानता पाई जाती है। बौद्धिकता में मानव का मस्तिष्क वस्तुओं के सत्य स्वरूप को समझने के लिए उनकी गहराई में प्रवेश करता हैं रागात्मिकता में ऐसा नहीं होता, उससे मानव का हृदय सहज रूप से ही बिना किसी विवेचना के कवि के कल्पना–सत्य के साथ तादात्म्य स्थापित करता है।

आज के वैज्ञानिक युग में मानव की रागात्मिक वृत्ति दब गई है और उसके साथ की कविता का भी ह्रास हुआ है। बौद्धिकता की ओर प्रवृत होने के कारण आज का लेखक तार्किक बन गया है और इसी से गद्य का भाग्योदय हो रहा है। इसी बौद्धिक प्रवृत्ति ने हिन्दी–साहित्य में एक और विधा को जन्म दिया, जिसे हम 'निबन्ध' कहते हैं।

आजकल हिन्दी में जो निबंध मिलते हैं वे पश्चिम की देन है। संस्कृत–साहित्य में गद्य तो मिलता है किन्तु 'निबन्ध–साहित्य' उपलब्ध नहीं। इतना अवश्य है कि 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग संस्कृत में काव्य–रचना के अर्थ में होता रहा है। हिन्दी में निबन्ध की यह विधा नई है किन्तु संस्कृत में यह शब्द प्रचलित होने के कारण नया नहीं है। तुलसी दास ने भी अपने 'रामचरितमानस' ग्रंथ के बाल–काण्ड के सातवें श्लोक में 'निबन्ध' शब्द को प्रयुक्त करके कहा है – ''स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथागाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।'' कहा जा सकता है कि निबन्ध की यह लता मस्तिष्क से सिंचित होकर विज्ञान की भूमि पर पुष्पित एवं पल्लवित हुई है।

वर्तमान हिन्दी–साहित्य में 'निबन्ध' शब्द अंग्रेजी के 'एस्से' का पर्यायवाची है। अंग्रेजी का यह शब्द फ्राँसीसी शब्द 'एसाई' से निकला है। विचारकों ने 'एस्से' शब्द का अर्थ भिन्न–भिन्न रूप में किए है।

सर्वप्रथम आधुनिक निबन्ध के जन्मदाता फ्राँसीसी विद्वान् मॉटेन (1533-92) द्वारा अंग्रेजी में 'एस्से' शब्द का प्रयोग हुआ। उसके समय में जब लेखक मन के भावों तथा उद्‌गारों को अभिव्यक्त किया करते थे तो उनमें किसी प्रकार का तारतम्य या शृंखला नहीं होती थी। भावों का विन्यास तथा भाषा का लाक्षव न होने पर भी उसमें लेखक की कल्पना, अनुभूति तथा व्यक्तित्व का समावेश रहता था। मॉटेन ने इस नई प्रकार की रचना–पद्धति का नाम ही 'एस्से' रखा। उसकी दृष्टि में ''निबन्ध वह है जिसमें वैयक्तिक विचारों या अनुभूतियों को कलात्मक सूत्र में पिरो देने का प्रयत्न किया जाए।''

अंग्रेजी निबंधकार बेकन (1561-1626) ने निबंध को 'बिखरा चिन्तन' कहकर पुकारा है। मॉटेन तथा बेकन की व्याख्या पर विचार करने से विदित होता है कि दोनों में कोई समानता नहीं। डॉ. जॉन्सन 'एस्से'

की परिभाषा करते हुए कहते हैं – ''निबंध मन का शिथिल विवरण एवं प्रस्फुटन है, इसमें नियमित क्रमबद्ध या परिपक्व शब्द योजना का अभाव रहता है।'' इस तरह जॉन्सन की परिभाषा के अनुसार निबंध में – मन का शिथिल विवरण अथवा मन की मुक्त भटकन–सी रहती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबंध को गद्य की कसौटी माना है। वे अंग्रेजी लेखकों की उक्त बात को स्वीकार न करते हुए कहते है – ''संसार की हर एक बात और सब बातों से संबद्ध है। अपने–अपने मानसिक संघटन के अनुसार किसी का मन किसी सम्बन्ध–सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। ये सम्बन्ध–सूत्र एक–दूसरे से नथे हुए, पत्तों के भीतर की नसों के समान चारों ओर एक जाल के रूप में फैले रहते हैं। तत्वचिंतक या दार्शनिक केवल अपने व्यापक सिद्धानतों के प्रतिपादन के लिए उपयोगी कुछ सम्बन्ध–सूत्रों को पकड़कर किसी ओर सीधा चलता है और बीच के ब्यौरे में कहीं–कहीं फँसता; पर निबन्ध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छन्द गति से इधर–उधर फूटी हुई सूत्र–शाखाओं पर विचरता रहता है, यही उसकी अर्थसम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है।'' शुक्ल जी के अनुरूप ही हर्बर्ट रीड़ ने निबन्ध के विषय में कहा है – ''एस्से किसी का जीवनवृत्त या आलोचनात्मक विश्लेषण नहीं होता, न ही यह इतिहास होता है और न ही एक प्रबन्ध। इसमें किसी विषय का व्यक्तिगत विश्लेषण तो होता है परन्तु आत्मीयता के रूप में नहीं, यह विषयगत तो होता है परन्तु विवेचनात्मक नहीं होता।''

इस विवेचना से प्रकट होता है कि पाश्चात्य निबन्ध लेखकों ने निबन्ध में व्यक्तित्व का प्रकाशन आवश्यक माना है और वे विषय की कुछ उपेक्षा–सी करते आए हैं। मॉटेन ने स्वयं अपने निबंधों को अपनी ही तस्वीर बताया है। भारत में व्यक्तित्व का यह प्रतिफलन लज्जा की बात मानी जाती रही है क्योंकि यहाँ के लेखक सदा ही शालीन रहे हैं। अतः निबंध के अन्तर्गत विषय–निरूपण के साथ व्यक्तित्व का जितना ही अंश स्वाभाविक रूप से आ जाए, वही उचित माना जाना चाहिए।

संस्कृत में निबंध का अर्थ है 'पूर्णरूप से गठित'। इसी के अनुरूप 'एस्से' का प्राचीन स्वरूप आज बदल कर नई रूप–रेखा के साथ प्रस्तुत हो रहा है। अंग्रेजी निबंधकारों जैसे एडिसन, चार्ल्स लैम्ब तथा पेटर आदि को हाथों निबन्ध–कला को शक्ति मिली और उन्होंने विशृंखलता तथा असम्बद्धता की प्रारम्भिक त्रुटियों को दूर हटाया। अंग्रेजी कोष में इसका नया अर्थ अब इस प्रकार मिलता है – ''एस्से सीमित आकार किन्तु विस्तृत शैली में लिखी हुई एक रचना है।'' पशचात्य विद्वान् 'मरे' ने कहा है ' 'निबंध के मौलिक रूप में अव्यवस्था का संकेत है पर अब यह शब्द ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिसमें शैली तो थोड़ी बहुत प्रयत्न सात्र्य रहती है पर जिसमें विषय का विस्तार सीमित रहता है।''

निबंध से मिलता–जुलता 'प्रबन्ध' शब्द है। प्रबन्ध भी निबंध की भाँति सुगठित होता है। दोनों में यह अन्तर है कि निबंध अपेक्षाकृत छोटा होता है और प्रबन्ध में विस्तार तथा व्यापकता रहती है। 'प्रबंध' के लिए अंग्रेज़ी में 'थीसिस' या 'ट्रीटाइज़' शब्दों का प्रयोग होता है।

2.8.2.2 निबन्ध के गुण :

निबन्ध में निहित व्यवस्था तथा श्रृंखलाबद्धता को ध्यान में रखकर हमें इसके पाँच तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं –

1. गद्यात्मकता

निबन्ध एक छोटी गद्य–रचना है। अपवाद स्वरूप हमें कुछ ऐसे निबन्ध भी मिलते हैं जो पद्य में लिखे गए हैं। हिन्दी में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने एक पद्य–निबन्ध लिखा है जिसका शीर्षक है – ''हे कविते !'' इसी भाँति अंग्रेज़ी में भी 'पोप्स एस्से ऑन मैन' पद्य में लिखा निबन्ध है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस गद्य की कसौटी मानकर कहा है – ''भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्धों में ही सबसे अधिक सम्भव होता है।''

2. मर्यादा

निबन्ध का दूसरा तत्त्व है उसकी मर्यादा। इसमें जब विषय आवश्यकता से बढ़ जाता है तो वह आवश्यक रूप से बड़ा हो जाता है। विद्वानों ने इसकी मर्यादा के विषय में कहा है कि वह 3500 शब्दों से लेकर 5000 शब्दों तक होना चाहिए। यदि वह 3500 शब्दों से कम हो तो वह रेखाचित्र हो जाता है और 5000 शब्दों से अधिक होने पर ही प्रबंध का रूप धारण करता है। निबंध को शब्दों की इस मर्यादा में बाँधना उचित नहीं। वास्तव में एक अच्छा निबन्ध वही है जिसमें विषय की व्यापकता तथा आकार की लम्बाई एक–दूसरे पर अवलम्बित हो। विषय को इतना व्यापक नहीं होना चाहिए कि वह आकार को छिन्न–भिन्न कर दे और न ही आकार इतना लम्बा हो कि विषय उसके सामने छोटा दिखाई दे। इसमें केवल विषय के एक ही पहलू पर विचार किया जाता है। विषय–क्षेत्र समुचित एवं संकीर्ण होने पर भी अपने आप में पूर्ण होता हैं। प्रारम्भ, मध्य तथा उपसंहार में तारतम्य होना अतीव आवश्यक है।

3. व्यक्तित्व की छाप

निबन्ध में लेखक के स्वाभाविक व्यक्तित्व का आभास मिल जाता है। आत्मप्रकाशन के कारण कई विद्वानों ने गीतिकाव्य की भाँति इसे विषयीगत साहित्य के अन्तर्गत रखा है। स्वाभाविक रूप में आए व्यक्तित्व द्वारा निबन्ध की शैली पर भी प्रभाव पड़ता है। भारतेन्दु–युग के सभी निबन्ध–लेखकों को हास्य विशेष प्रिय था और उनके निबन्धों में इस बात की छाप पड़ी है। मनमौजी प्रताप नारायण मिश्र के विनोदी स्वभाव की छाया जो उसके निबंध 'समझदार की मौत' में पड़ी है, उसका एक उदाहरण देखिए – ''सच है ''सब तें भले हैं मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगत गति।' मज़े से पराई जमा गपक बैठना, खुशामदियों से गप मारा करना, जो कोई तिथ त्यौहार आ पड़ा तो गंगा में बदन धो आना। गंगा पुत्र को चार पैसे देकर सेंत–मेंत में धरम–मूरत, धरम औतार का खिताब पाना, संसार परमार्थ दोनों तो बन गए, अब काहे को है है और काहे की खै खै ?''

4. बुद्धि तत्त्व

यह निबन्ध का चौथा तत्त्व है। निबन्धकार का प्रधान लक्ष्य यही होता है कि वह पाठक की बुद्धि को सन्तुष्ट करे। इसके लिए वह कल्पना का गौण स्थान देकर तर्क के सहयोग से पहले पाठक के मस्तिष्क पर अधिकार करता है और फिर अपनी बुद्धि के वैभव से उसका मनोरंजन करता है। बुद्धि तत्त्व के साथ अच्छे निबन्ध में भाव तत्त्व का योग भी रहता है। इस भाव तत्त्व की स्वतंत्र सत्ता नहीं होती अपितु वह बुद्धि–तत्त्व के ही आश्रित रहता है। काव्य में हृदय पक्ष प्रधान तथा मस्तिष्क पक्ष गौण रहता है। हिन्दी–साहित्य में रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध विचार–प्रधार होकर भी भाव तरंगों से युक्त है। उनके निबंधों जैसे 'करुण', 'लोभ और प्रीति' तथा 'श्रद्धा–भक्ति' में उनकी एक–रूपता दर्शनीय है।

5. औपचारिकता का अभाव

निबन्ध में पाठक तथा लेखक अनायास ही सम्पर्क में आते हैं इसलिए उनमें किसी प्रकार की औपचारिकता नहीं रहती। इस रचना–पद्धति में उन (पाठक तथा लेखक) को संभाषण की स्वतन्त्रता सी मिली हुई दीखती है। 'मरे' महोदय ने तभी निबंध के विषय में संकेत करते हुए कहा है कि इसमें 'परिष्कार का अभाव' रहता हैं बेकन का यह कथन है कि उसके निबंध ''लाक्षणिक ढंग से लिखे गये संक्षिप्त टिप्पणों के समान हैं, न कि यत्नपूर्वक लिखे गए टिप्पणों के समान।'' यह एक ऐसी अनावृत चिट्ठी की भाँति होता है जो किसी विशेष व्यक्ति के लिए लिखी नहीं जाती परन्तु भावुक पाठक यही अनुभव करता है कि ऐसा सब–कुछ उसी के लिए लिखा गया है। निबन्ध की इस कला को कोई भी गुरु से सीख नहीं पाता चाहे यह कितना ही प्रयत्न क्यों न करे। इसके सीख लेने का कोई निश्चित नियम नहीं है और इसी से कहा जा सकता है कि निबन्ध में औपचारिकता का अभाव रहता है।

2.8.3 सारांश :

इस पाठ के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि निबन्ध एक साहित्यिक विधा है जिसमें बुद्धि तत्त्व की प्रधानता होती है। लेखक अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र होता है इसलिए उसके व्यक्तित्व की छाप निबन्ध पर अवश्य पड़ती है। आज साहित्य में विभिन्न प्रकार के निबन्ध–लेखन का कार्य निरन्तर हो रहा है।

2.8.4 शब्दावली :

परिष्कृत	–	सुधरा हुआ
संस्कार	–	शुद्ध करना
सद्प्रयास	–	अच्छे यत्न
रागात्मक	–	हृदय से जुड़े कोमल भाव
बौद्धिक	–	बुद्धि से जुड़े विचार
वृक्षि	–	स्वभाव
उपसंहार	–	निष्कर्ष

2.8.5 बोध प्रश्न :

1. हिन्दी में निबन्ध लेखन कब से प्रारंभ हुआ ?
2. हिन्दी के प्रमुख निबन्धकार कौन से हैं ?
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रमुख निबन्ध–संग्रह कौन से है ?
4. निबन्ध के अनिवार्य तत्त्व कौन से माने जाते हैं ?
5. पूर्ण सिंह के निबन्धों के नाम बताएं।

पाठ संख्याः 2.9 (A) **लेखक : श्री निर्मल सिंह**

जीवनी परिभाषा एवं तत्त्व

पाठ की रूपरेखा

2.9.0 उद्देश्य
2.9.1 प्रस्तावना
2.9.2 जीवनी की परिभाषा
2.9.3 जीवनी के तत्त्व
2.9.4 सारांश
2.9.5 शब्दावली
2.9.6 बोध प्रश्न।

2.9.0 उद्देश्य :

इस पाठ से आपके हिन्दी साहित्य की नवीन–विधा–जीवनी का विस्तृत परिचय दिया गया है। जीवनी लेखक किसी महान व्यक्ति के जीवन की सभी घटनाओं को साहित्यिक रूप देकर बड़ी कलात्मकता से प्रस्तुत करता है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि;

* जीवनी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है क्योंकि इसके माध्यम किसी महानपुरुष के जीवन–चरित का परिचय प्राप्त होता है,
* जीवनी में चरित–नायक के चरित्र एवं स्वभाव के गुण–दोषों का ज्ञान प्राप्त होता है, और
* जीवनी लेखन में नायक के जीवन से जुड़ी घटनाओं और विभिन्न परिस्थितियों का ज्ञान सहज ही हो जाता है।

2.9.1 प्रस्तावना :

जीवनी लेखक द्वारा चरित नायक के जीवन से जुड़े विभिन्न प्रसंगों का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया जाता है। वह यथार्थ जीवन की घटनाओं को अपनी कल्पना द्वारा सुन्दर और कलात्मक रूप देता है। लेखक चरित नायक के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है और उसके विचारों को मान्यता प्रदान करते हुए उसे दूसरों के लिए एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है।

2.9.2 जीवनी की परिभाषा :

साहित्य के सभी रूपों–काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी तथा निबंध में मानव–जीवन का चित्रण रहता है। साहित्यकार मानव–जीवन को अपनाकर उसकी भावनाओं तथा विचार–धाराओं को अभिव्यक्त करता है। यह जीवन के विविध पक्षों का अपनी रचनाओं में चित्रण करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार मानव–जीवन के साथ सम्बंध रखने के कारण साहित्य के सभी रूप जीवन–चरित कहला सकते हैं, किन्तु यह सामान्य अर्थ साहित्यिक जीवन–चरित के लिए यहाँ प्रयोग में लाया नहीं जा सकता। वास्तव में यहाँ साहित्यिक जीवन–चरित से अभिप्राय है– मानव–समाज में से किसी विशिष्ट चरित्रनायक को चुनकर अपने जीवन–चरित को आदि से अन्त तक वर्णित करना तथा उसके जीवन से संबंध रखने वाली सभी समय–समय पर घटित घटनाओं का

ब्यौरा प्रस्तुत करना। अतः साहित्यिक जीवन–चरित में लेखक जीवन को प्रमुख एवं वास्तविक घटनाओं के बल पर चरितनायक की चारित्रिक विशेषताओं का काव्य–रूप में चित्रण करता है। गुलाबराय ने कहा है – ''जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं वरन् चित्रण है, वह साहित्य की विधा है और उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण हैं। वह एक मनुष्य के अन्तर और बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण है।''

जीवनीकार चरितनायक के जीवन–चरित का उल्लेख करते हुए सच्चाई को तिलांजलि नहीं देता। वह चारण की भाँति चरित्रनायक के राई जैसे गुण को पर्वत के समान प्रदर्शित करने का प्रयत्न नहीं करता, वह तो सत्य–पथ का अनुसरण करके उस (चरित्रनायक) के गुण–दोष दिखाकर संतुलन की स्थापना करता है। इस मर्यादा की रक्षा के लिए वह सब कुछ त्याग देने के लिए उद्यत रहता है।

मानव के लिए मानव सबसे बड़ी पहेली रहा है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि आलोचक पोप ने कहा है कि ''मेरे मत में मानव के अध्ययन का उचित विषय मनुष्य ही है।'' जीवन–चरित में पाठक चरितनायक के व्यक्तित्व का परिचय उसके कार्य–व्यापारों से ही प्राप्त करता है। मॉटेन का कथन है – ''मैं उन लेखकों की रचनाओं को अधिक रुचि से पढ़ता हूँ जो जीवन–चरित लिखते हैं, क्योंकि सामान्यतया मनुष्य, जिसके पहचानने के लिए मैं सदा प्रयत्नशील रहा हूँ, साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा जीवन–चरित में कहीं अधिक विशद तथा परिपूर्ण होकर प्रकट होता है। साथ ही उसकी आंतरिक गुणावलियों की यथार्थता तथा बहुविधता, उन उपायों की, जिनके द्वारा वह संश्लिष्ट तथा सुसंबद्ध रहता है, और उन घटनाओं की, जो उस पर घटती हैं, बहुविधता मुझे जैसी जीवन–चरित की परिधि में सम्पन्न होती दीखती हैं, वैसी अन्यत्र नहीं।''

जीवन–चरित पढ़कर पाठक चरित्रनायक की आत्मा तथा शरीर में प्रवेश करता है। जीवन–चरित से ही हमें इन बातों का स्पष्ट उत्तर मिलता है कि किसी ने नाटक ही क्यों लिखा? कोई कवि क्यों बना अथवा किसी ने उपन्यास की रचना ही क्यों की ? आदि। जीवन–चरित द्वारा मानव को मानव के समझने का अवसर मिलता है और वह चरित्रनायक के जीवन में आई हुई कठिनाइयों को भली–भाँति जानकर उसकी विवशताओं एवं परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जीवन–चरित का निर्माण वैयक्तिकता तथा वास्तविकता के अनुपम योग से ही होना संभव बनता है।

हिन्दी में जीवन–चरित की परम्परा नाभादास की 'भक्तमाल' तथा बाबा बेनीमाधवदास के 'गोसाई–चरित' से चली आ रही है। ये हिन्दी की पुरानी जीवनियाँ हैं। फिर समय–समय पर महाराज रघुराजसिंह का 'रामरसिकावली', भारतेन्दु का 'उत्तरार्ध भक्तमाल', राधाचरण गोस्वामी का 'नवभक्तमाल' तथा ध्रुव दास का 'ध्रुवमाला' आदि जीवन–चरित लिखे गए। इन जीवनियों में लेखकों ने चरित्रनायकों की विशेषताओं का विशद रूप से उल्लेख किया है। उन्होंने चरित्रनायकों के जन्म, मरण अथवा उनके माता–पिता से संबंधित घटनाओं को छुआ तक नहीं है क्योंकि भारतीय परम्परा में व्यक्तिगत जीवन को महत्त्व देना तुच्छ समझा गया है। यही कारण है कि संस्कृत तथा हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों की जीवन–गाथाएँ विस्मृति के गहन अन्धकार में विलीन हो गई है। आज भी हम कालिदास, तुलसीदास, सूरदास प्रभूति कवियों के जीवन–चरित के संबंध में विश्वस्तरूप से कुछ कह नहीं सकते। इन जीवन–चरितों को शैली की दृष्टि से पद्य में अधिक और गद्य में कम लिखा गया है।

हिन्दी में सन् 1882 से आधुनिक ढंग से जीवन–चरित का लिखा जाना आरम्भ हुआ। इसी समय पुरानी परम्परा की रक्षा करते हुए सर्वप्रथम भारतेन्दु ने 'चरितावली' लिखी। भारतेन्दु के समकालीन तथा परवर्ती लेखकों ने भी अनेक जीवन–चरित लिखे। इन लेखकों से पूर्व गद्य में 'चौरासी वैष्णावन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णावन की वार्ता' आदि जैसे जीवन–चरित लिखे जा चुके थे। अधिकतर इन में घटनाओं को ही प्रधानता मिली है। आजकल जीवन–साहित्य के नये साहित्यिक रूप विकसित हो रहे हैं।

2.9.3 जीवनी के तत्त्व :

जीवनी में पाँच तत्त्व रहते हैं जो इस प्रकार हैं – 1. घटना 2. चरित्र–चित्रण 3. देशकाल 4. उद्देश्य तथा 5. शैली।

1. घटना

जीवन–चरित का कलेवर घटनाओं के आधार पर ही खड़ा किया जाता है। ये घटनाएँ काल्पनिक न होकर वास्तविक होती हैं। इन घटनाओं से ही चरित्रनायक का स्वरूप उद्भासित होता है। लेखक चरित्रनायक के जीवन के प्रत्येक पन्ने को उलटता है और उसमें आने वाली दुर्बलता–सबलता, तुच्छता–महानता तथा अनुदारता–उदारता आदि का साकार रूप पाठक के सामने रख देता है। इन घटनाओं को चित्रित करने के लिए लेखक को इतिहासकार की भाँति चरित्रनायक के विषय में अनुसंधान एवं अन्वेषण करना पड़ता है। उसे जो घटना–तथ्य प्राप्त होते हैं, पहले लेखक उसका पर्यालोचन करता है और फिर कल्पना के सहारे उन्हें काव्यमय रूप देते हुए सँवारता है। इस प्रकार जीवन की घटनाएँ इतिहास के शुष्क क्षेत्र से निकलकर साहित्य के रसमय क्षेत्र में प्रवेश करती हैं।

इतिहास तथा जीवन–चरित में महान् अन्तर है। इतिहासकार देश अथवा जाति की पृष्ठभूमि पर घटनाओं का चित्रण करता है किन्तु जीवनी–कार का ध्येय व्यक्ति या चरित्रनायक होता है। इतिहासकार के लिए जो बातें त्याज्य होती हैं, जीवनीकार के लिए वहीं बातें ग्राह्य बन जाती हैं। सामान्य से सामान्य बात को महत्त्व देकर चरित्रनायक के खाने–पहनने की रुचि से लेकर उसके भ्रमण तक का चित्रण अनायास कर सकता है। ऐसी बातें इतिहासकार के लिए अनावश्यक होती हैं और वह केवल राज्य–परिवर्तन अथवा किसी युद्ध की ही अपेक्षा करता है।

2. चरित्र-चित्रण

सामयिक समाज अथवा इतिहास में प्रसिद्ध चरित्रनायक को ही जीवनीकार अपना चरित्रनायक बनाता है। इस चरित्रनायक के जीवन का सम्यक् अध्ययन करके वह उसके समीप पहुंचने का प्रयास करता है। चरित्रनायक की विशेषताएँ उसे अपनी ओर आकर्षित करती हैं और तभी जीवनीकार उसकी उदात्त भावनाओं तथा सराहनीय कार्यों को अपना वर्ण्य–विषय बना डालता है। चरित्रनायक का समीपता से अध्ययन करके जब जीवनीकार को उसकी दुर्बलताएं दृष्टिगोचर होती है तब वह उनका चित्रण किए बिना भी रह नहीं सकता। चरित्रनायक के सम्बन्ध में वह जो कुछ जानना चाहता है उन तथ्यों का परिचय वह लिखित, अलिखित अथवा विश्वस्तसूत्रों से प्राप्त सामग्री द्वारा करता है। जीवनीकार को चरित्रनायक के प्रति अन्ध–भक्ति नहीं होती अपितु वह उसके प्रति सहानुभूति एवं श्रद्धा अवश्य रखता है। दोषों का निरूपण करके वह चरित्रनायक के प्रति स्थापित श्रद्धा में न्यूनता नहीं आने देता क्योंकि इन ही दोषों से वह उसके व्यक्तित्व में सजीवता लाता है। उसके चरित्र की व्याख्या करके वह दोनों–गुण–दोष– का परिचय देना अपना कर्तव्य समझता है। गुण–दोष के इसी समन्वय के आधार पर पाठक निष्पक्ष रूप से चरित्रनायक से कार्यव्यापार का परिशीलन करके किसी निर्णय पर पहुंच जाता है।

3. देशकाल

चरित्रनायक किसी देश अथवा काल में ही अपना जीवन–यापन करता है। इसीलिए उसकी सभी घटनाएँ देशकाल से सम्बन्धित रहती हैं। जीवनीकार देशकाल को जीवनी में गौण स्थान देता है किन्तु चरित्रनायक को ही मुख्यता प्रदान करता है। इस प्रकार जीवन–चरित में देश–काल का चित्रण गौण होकर व्यंग्य रूप में रहता है।

4. उद्देश्य

जीवनीकार की चरित्रनायक के प्रति श्रद्धा होती है और इसका आधार उसके जीवन की वे विशेषताएँ होती हैं जिन्हें जीवन–चरित में स्थान दिया जाता है। इन विशेषताओं में चरित्रनायक की जीवन से सम्बन्ध रखने वाली उन विचारधाराओ, मान्यताओं तथा नैतिक धारणाओं का चित्रण होता है जिन्हें जीवनीकार उद्देश्य के रूप में ग्रहण करता है। जीवन के सत्य का प्रकाशन होने से ही जीवन–चरित को साहित्य का अत्यावश्यक अंग माना जाता है।

5. शैली

जीवन–चरित लिखने के लिए सर्वप्रथम जीवनीकार को चरित्रनायक के सम्बन्ध में कुछ तथ्यों का अन्वेषण करना पड़ता है। ये तथ्य चरित्रनायक के जीवन के बिखरे कण होते हैं, जिन्हें वह इधर–उधर से खोज निकालता है। जीवनीकार इन बिखरे तथ्यों को इस प्रकार अन्विति करता है जिससे पाठक पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इसके लिए जीवनीकार को विशेष प्रकार के बुद्धि–कौशल का आश्रय लेना पड़ता है और इसी (बुद्धि–कौशल) की परिचायिका शैली होती है। जीवनीकार को सामंजस्य का ध्यान रखना पड़ता है और वह इसके लिए अपेक्षित तथ्यों को ग्रहण करके अनपेक्षित तथ्यों को तिलांजलि दे देता है। निरपेक्षभाव से ही वह इन तथ्यों का चित्रण करता है। ऐसा करने से ही चरित्रनायक के प्रति श्रद्धा रखकर भी जीवनीकार अन्ध–भक्त नहीं बनता।

अधिकतर जीवन–चरितों में ही शैली का तत्त्व उभर आता है। इसी के आधार पर साधारण से साधारण चरित्रनायक की जीवनी एक आकर्षक रूप धारण करती है। जीवनीकार संतुलन को खोकर अपनी स्वतंत्रता को त्याग नहीं देता। सत्य पर आश्रित उसकी धारणा समाज को समुचित मात्रा में सहृदयता से भर देती है। शैली के इन गुणों को अपनाकर ही जीवनीकार विविधता में भी एकता के दर्शन करा देता है।

2.9.4 सारांश :

इस पाठ के अध्ययन के बाद यह स्पष्ट होता है कि जीवनी लेखन में लेखक का उद्देश्य चरित–नायक के जीवन के सम्बन्धित विचारधाराओं, मान्यताओं और नैतिक धारणाओं का चित्रण करना होता है। चरित नायक के चरित्र के उज्ज्वल पक्षों को उभारना लेखक अपना कर्त्तव्य समझता है जिससे अन्य लोगों के सामने एक उदाहरण खड़ा किया जा सके।

2.9.5 शब्दावली :

चरित नायक	–	जिसकी जीवनी लिखी जा रही है
अनुपम	–	सुन्दर
उद्भासित	–	प्रस्तुत करना
सामजस्य	–	मेल
तथ्यों	–	सत्यों

2.9.6 बोध प्रश्न :

1. हिन्दी में जीवनी लेखन कब से आरंभ हुआ ?
2. भारतेन्दु रचित जीवनी का नाम बताए।
3. जीवनी की प्रमुख तत्त्व कौन से होते हैं ?
4. जीवनी किसी शैली में लिखी जाती हैं ?
5. जीवनी लेखन का उद्देश्य क्या होता है ?

पाठ संख्याः 2.9 (B) **लेखक : सोनू वाला**

संस्मरण : परिभाषा एवं तत्त्व

पाठ की रूपरेखा

2.9.0 उद्देश्य
2.9.1 प्रस्तावना
2.9.2 संस्मरण की परिभाषा
2.9.3 संस्मरण के तत्त्व
2.9.4 सारांश
2.9.5 शब्दावली
2.9.6 बोध प्रश्न।

2.9.0 उद्देश्य :

इस पाठ में आपको हिन्दी की एक अन्य नवीन विधा–संस्मरण से परिचित कराया जाएगा। संस्मरण में किसी व्यक्ति के जीवन के किसी एक खंड या किसी महत्त्वपूर्ण घटना का वर्णन होता है। लेखक अपने जीवन की किसी एक प्रमुख घटना को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि,

* संस्मरण लेखक के जीवन की किसी एक घटना पर आधारित रहता है,
* यह घटना ऐसी होती है जिसे लेखक जीवन भर भुला नहीं सकता,
* यह आत्मनिष्ठ विधा होती है, और
* इसमें कथा का मुख्य पात्र लेखक स्वयं होता है।

2.9.1 प्रस्तावना :

किसी घटना, स्थल या व्यक्ति से सम्बन्धित अनुभूति लेखक के हृदय पटल पर छा कर उसके मन को भीतर ही भीतर कुरेदती रहती है। यह अभिव्यक्ति के रूप में आकर संस्मरण बन जाती है। लेखक के जीवन में अनेक ऐसे क्षण आते हैं, जब ऐसे व्यक्तियों से उसका सम्पर्क होता है, जिन्हें वह जीवनभर नहीं भुला पाता। उनकी अनुदिन स्मृति की निधि जो अन्तराल में छिपी होती है, भावावेश में संस्मरण के रूप में छलक पड़ती है। संस्मरण लेखक के निजी जीवन की सत्य घटना पर आधारित होता है।

संस्मरण गद्य की एक आत्मनिष्ठ विधा है। संस्मरणकारी अपने व्यक्तिगत जीवन तथा अपने सम्पर्क में आये हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के किसी पहलू पर अनुभूति के आधार पर प्रकाश डालता है। अपने व्यक्तिगत जीवन में हम नित्य ही अनेक निजी जनों के सम्पर्क में आते रहते हैं। साधारण व्यक्ति इन क्षणों को भूल जाता है किन्तु संवेदनशील कलाकार के अन्तःपटल पर ये क्षण सदा के लिए विराजमान रहते हैं। इन क्षणों की स्मृति जब कभी उसे आकुल बना देती है, तभी संस्मरण साहित्य की सृष्टि होती है।

'संस्मरण' में जीवन के एक खण्ड या एक महत्त्वपूर्ण घटना का वर्णन होता है। लेखक अपनी इच्छानुसार केवल चुनी हुई बातों व घटनाओं को पाठक के सम्मुख रखता है। इसमें कथा का प्रमुख पात्र स्वयं लेखक

होता है। इतिहास की घटनाओं एवं परिस्थितियों को केवल उसी रूप में प्रस्तुत करता है जो उसके जीवन–क्रम को प्रभावित, संचालित एवं नियन्त्रित करता है। संस्मरण–लेखक, जो स्वयं देखता है जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। उस वर्णन में उसकी अपनी संवेदनाएं भी रहती है।

2.9.2 संस्मरण की परिभाषा :

संस्मरण हिन्दी साहित्य की नवीनतम विधा है। स्मरण शब्द में सम् उपसर्ग लगाकर संस्मरण बना है। स्मृति–चित्रों को प्रस्तुत करना ही संस्मरण है। यह स्मृति–चित्र अतीत का ही होता है जिसका अंकन किया जाता है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार ''स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखित लेख या ग्रंथ को संस्मरण कहते हैं।''

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार – ''भावुक कलाकार जब अतीत की अत्यन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यञ्जनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है, तब उसे संस्मरण कहते हैं।''

डॉ. चौहान के शब्दों में, ''संस्मरण में लेखक किसी ऐसी घटना, स्थल या व्यक्ति से संबंधित निजी अनुभूति की स्मृति को साकारता प्रदान करते हैं, जो अन्दर ही अन्दर उसके मन को कुरेदती रहती है और अभिव्यक्ति के लिए उसके मन–प्राण को उद्वेलित करती रहती है।'' वस्तुतः संस्मरण–लेखक जो कुछ देखता और अनुभव करता है उसे अपनी अनुभूतियों से राग–रंजित कर प्रस्तुत कर देता है। वह इतिहासकार की भाँति तथ्यपरक विवरण भर नहीं देता, वरन् अपनी अनुभूतियों की साहित्यिकता से अभिमंडित कर उपस्थित करता है। संस्मरण और इतिहास में मूलभूत अन्तर है। संस्मरण लेखक इतिहासकार के समान नहीं होता। इतिहासकार व्यक्ति के पूरे जीवन को अंकित करने के लिए बाध्य है। दूसरी ओर अपने जीवन की किसी घटना को लेकर मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करना भी संस्मरण कहलाता है। संस्मरण को आत्मकथा भी नहीं कह सकते क्योंकि आत्मकथा और संस्मरण में अन्तर यह है कि आत्मकथा में कथा का प्रमुख पात्र लेखक स्वयं होता है जबकि संस्मरण का प्रमुख पात्र कोई और होता है। रेखाचित्र की अपेक्षा संस्मरण में निजीपन अधिक होता है। संस्मरण प्रायः महान् व्यक्तियों के ही लिखे जाते हैं। इसका सम्बन्ध देशकाल तथा पात्र तीनों से होता है। इसमें लेखक जैसा देखता है, अनुभव करता है, वैसा ही वर्णन करता है।

संस्मरण वह गद्य रचना है जिसमें लेखक अपनी अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेतात्मक शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से समाहित कर विशिष्ट, रमणीय तथा प्रभावशाली रूप से व्यक्त करता है। एक श्रेष्ठ संस्मरण के लिए विषय की यथार्थता, वैयक्तिकता, संक्षिप्तता, चित्रात्मता, संवेद्यता तथा प्रभावी भाषा–शैली का होना आवश्यक है। इस आधार पर संस्मरण के निम्नलिखित तत्त्व निर्धारित किए जा सकते हैं।

2.9.3 संस्मरण के तत्त्व :

1. विषय-वस्तु

विषय–वस्तु अथवा वर्ण्य–विषम संस्मरण का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। वर्ण्य–वस्तु के सम्बन्ध में विचार करने की दो दिशाएँ संभव हो सकती हैं – एक तो वह स्थिति जिसमें कोई महान् अथवा प्रसिद्ध व्यक्ति स्वयं अपने जीवन के संस्मरण लिखता है और दूसरी वह स्थिति जिसमें कोई अन्य व्यक्ति किसी महान् व्यक्ति के जीवन के संस्मरण लिखता है। स्थिति कोई भी हो, इतनी बात अवश्य है कि संस्करण किसी महान् अथवा सुप्रसिद्ध व्यक्ति को लेकर लिखे जाते हैं। वर्ण्य व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित हो सकता है। धर्म, राजनीति, साहित्य अथवा ऐसे ही किसी अन्य जीवन क्षेत्र की महान् विभूतियों को लेकर संस्मरणों की रचना की जाती है। वर्ण्य–वस्तु अथवा वर्ण्य व्यक्ति की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि उसका

प्रस्तुतिकरण अत्यन्त रोचक होना चाहिए। जिन संस्मरणों में वर्ण्य शक्ति के जीवन के ब्यौरे एक इतिहासकार की भाँति क्रमबद्ध ढंग से रख दिए जाते हैं, उनमें स्वभावतः एक प्रकार की नीरसता का समावेश हो जाता है। अतः वर्ण्य–विषय को प्रभावोत्पादक बनाने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उसे रोचक ढंग से यह आवश्यक है कि उसे रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाए। वर्ण्य–विषय के प्रभावशाली प्रस्तुतिकरण के लिए उसमें स्पष्टता होनी भी उतनी ही आवश्यक है। स्पष्टता का आशय यही है कि संस्मरण के लेखक को स्वयं अपने जीवन के अथवा अपने चरितनायक के जीवन के मधुर और तिक्त अनुभवों का वर्णन पूरी ईमानदारी के साथ करना चाहिए। इस ईमानदारी और स्पष्टता के लिए यह आवश्यक है कि संस्मरण के लेखक और वव्य–व्यक्ति के बीच गहरा सम्बन्ध रहा हो और संस्मरणों के लेखक को वर्ण्य–व्यक्ति के अतयन्त निकट रहकर उसे अच्छी तरह देखने–समझने का अवसर प्राप्त हुआ हो। वर्ण्य–विषय के प्रभावशाली प्रस्तुतिकरण के लिए सुसंगठितता का हेना भी आवश्यक है। यद्यपि संस्मरण में वर्ण्य–व्यक्ति के जीवन के बिखरे हुए सूत्रों की कलापूर्ण व्याख्या होती है फिर भी उन बिखरे हुए सूत्रों में भी एक शैलीगत कसावट होनी अपेक्षित है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि संस्मरणों का आकार संक्षिप्त होता है और उसी सीमित परिधि के भीतर उसे संस्मरण को संजोना होता है। अतः लेखक को घटनाओं के अनावश्यक ब्यौरों के विस्तार से बचना चाहिए। संस्मरणों के वर्ण्य–विषय की विशेषता इसी बात में निहित है कि वह रोचक हो और उसमें कौतुहल बराबर बना रहे। थोड़े से थोड़े शब्दों में किसी महान् व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित मधुर–तिक्त अनुभवों को कलात्मक स्पर्श देकर प्रस्तुत करना संस्मरण के वर्ण्य–विषय की अन्यतम विशेषता कही जा सकती है।

2. चरित्र-चित्रण

संस्मरण में या तो स्वयं लेखक द्वारा अपने जीवन के अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अपने चरित–नायक के जीवन के कतिपय स्मरणीय अनुभवों का वर्णन होता है। जब कोई लेखक स्वयं अपने जीवन के संस्मरण लिखता है तो वे संस्मरण आत्मकथा के बहुत निकट समझे जा सकते हैं। जब कोई लेखक किसी अन्य महान् व्यक्ति से संबंधित संस्मरण लिखता है तो कभी–कभी वर्ण्य व्यक्ति के सम्बन्ध में अपने विचारों को भी अभिव्यक्ति दे देता है और ये विचार अनिवार्यतः वर्ण्य व्यक्ति के सम्बन्ध में अपने विचारों को भी अभिव्यक्ति दे देता है और ये विचार अनिवार्यतः वर्ण्य व्यक्ति की प्रशंसा के ही परिचायक नहीं होते। कई बार लेखक वर्ण्य व्यक्ति के जीवन की आलोचना भी कर देता हैं। इस प्रकार संस्मरणों में कभी–कभी वर्ण्य व्यक्ति के साथ–साथ संस्मरण के लेखक के व्यक्तित्व की आभा भी उभरकर आती है। वर्ण्य–व्यक्ति का चरित्र चित्रण करते समय संस्मरण के लेखक मनोवैज्ञानिक पद्धति का परिचय भी देते हैं और इस प्रकार वर्ण्य व्यक्ति के व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण रेखाओं को मुखरित कर देते हैं। मनोवैज्ञानिक पद्धति द्वारा लेखक वर्ण्य व्यक्ति के अन्तर्मन में उत्पन्न होने वाले भावों को भी साकार कर देता है।

3. परिवेश चित्रण

संस्मरण में परिवेश अथवा देशकाल, वातावरण आदि के निर्माण की उपादेयता यह होती है कि इनके द्वारा वर्ण्य–व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है और उस विकास को समझने के लिए देश काल तथा वातावरण आदि से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि देश काल, वातावरण आदि का निर्माण संस्मरण लेखक का मूल लक्ष्य नहीं होता अपितु संस्मरण साहित्य को वास्तविकता प्रदान करने में सहायक है। देश काल की पृष्ठभूमि के बिना पात्रों का एवं लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता। देश और काल में वास्तविकता लाने के लिए स्थानीय ज्ञान आवश्यक है। परिवेश चित्रण के लिए यह आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे, स्वयं साध्य न बन जाए। देश काल तथा वातावरण के निर्माण से वर्ण्य व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने में पूरी सहायता मिलती है। देश काल तथा वातावरण आदि से आशय

देश की युग विशेष की राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से होता है। वर्ण्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास इन्हीं परिस्थितियों के मध्य होता है। अतः उस व्यक्ति को ठीक से समझने के लिए उसके आस–पास की परिस्थितियों को समझना भी आवश्यक है।

4. उद्देश्य

संस्मरण लेखक का उद्देश्य स्वयं अपने जीवन अथवा यदि संस्मरण अन्य व्यक्ति द्वारा लिखा जाए तो वर्ण्य व्यक्ति के जीवन की कतिपय रमणीय स्मृतियों को पुनर्जीवित करना होता है। निंसन्देह ऐसा करते समय संस्मरण का लेखक उन रमणीय स्मृतियों को कलात्मक स्पर्श दे देता है और उनमें अनुभूत्यात्मक संवेदना समाविष्ट कर देता है। इस प्रकार ये संस्मरण अतीत की मधुर और तिक्त स्मृतियों में से कुछ अत्यन्त सशक्त और जीवन स्मृतियों का साकार रूप होते हैं। वर्ण्य–व्यक्ति के जीवन की जिन घटनाओं ने लेखक को बहुत गहरे प्रभावित किया हो, संस्मरण में केवल उन्हीं महत्त्वपूर्ण घटनाओं और तद्जन्य स्मृतियों का अंकन होता है। संस्मरण लेखक का कार्य मूलतः स्वान्तःसुखाय होता है। अतीत की जीवन्त स्मृतियों को अभिलेखबद्ध करके संस्मरण लेखक को एक विशेष प्रकार की तुष्टि होती है और फिर ये संस्मरण उसके भावी जीवन के लिए निरन्तर प्रेरणा–स्रोत बने रहते हैं। अतः संस्मरण लेखक का उद्देश्य जहाँ स्वान्त–सुखाय रचना करना है वहाँ प्रभावशाली अतीत की स्मृतियों की चित्रण करना भी है जिससे उसे समय समय पर उत्साह व प्रेरणा मिलती रहे। प्रत्येक व्यक्ति की यह आकांक्षा होती है कि उसको जीवन में जो अनुभव हुए हैं वह दूसरे को बतलाए जिससे वे उनसे लाभ प्राप्त कर सके। इसी उद्देश्य को लेकर प्रसिद्ध व्यक्ति अपने अनुभवों को संस्मरणों का रूप देकर पाठकों के सामने रखते हैं।

5. भाषा शैली

संस्मरण लेखन में भाषा शैली का बहुत महत्त्व होता है। संस्मरण एक विशिष्ट प्रकार की साहित्यिक विधा है। अतः उसकी रचना भी एक विशेष शैली और भाषा में की आती है। संस्मरणों को शैली की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी प्रभावोत्पादकता होती है। संस्मरण की शैली ऐसी होनी चाहिए कि उसे पढ़कर पाठक के मन पर गहरा प्रभाव पड़े। केवल शैलीगत प्रभावोत्पादकता ही संस्मरण की सफलता की एकमात्र कसौटी नहीं होती। संस्मरण की शैली में रोचकता का होना भी आवश्यक है। यह उल्लेखनीय है कि संस्मरण भी साहित्य की एक विधा होती है और साहित्य का रोचक होना परमावश्यक होता है। अतः संस्मरण की शैली में रोचकता का वर्णन अत्यावश्यक है। संस्मरण की शैली में आत्मीयता का होना भी आवश्यक है। शैली की इस विशेषता का महत्त्व केवल उन्हीं संस्मरणों में नहीं होता जिनमें स्वयं अपने संस्मरण लिखते हैं अपितु उन संस्मरणों को लेकर भी होता है जिनमें वर्ण्य व्यक्ति के संस्मरण के लेखक अलग अलग होते हैं। जब कोई लेखक किसी महान् व्यक्ति के संस्मरण लिखता है तो उन संस्मरणों में वास्तविकता तभी आ पाती है जबकि लेखक वर्ण्य व्यक्ति के महान् व्यक्तित्व के प्रति अगाध श्रद्धा और अत्यधिक आत्मीयता का भाव रखता हो। आत्मीयता का यह भाव समूचे संस्मरण को और अधिक वास्तविक तथा प्रभावोत्पादक बना देता है। यदि लेखक किसी अन्य व्यक्ति के संस्मरण लिखता है तो भी अपने आत्मीयता के भाव के कारण वह उसे और अधिक जीवन्त और यथार्थमय बना देता है। संस्मरण लेखक की शैली में संक्षिप्तता का होना भी आवश्यक है। संस्मरणों की भाषा स्थिति और भावों के अनुकूल होनी चाहिए। कृत्रिमता और अलंकारों का अत्यधिक आग्रह भाषा की प्रभावोत्पादकता को नष्ट कर देता है अतः संस्मरणों की भाषा अत्यन्त स्वाभाविक और भावानुकूल होनी चाहिए। उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त संस्मरण लेखक की अमूर्त स्मृतियों को यथार्थता प्रदान करने के लिए चित्रात्मकता का आश्रय लेकर संस्मरण को सर्व–संवेद्य बनना चाहिए। जिस व्यक्ति का वह संस्मरण लिख रहा है उसके प्रति उसकी वैयक्तिकता का भाव भी व्यक्ति होना चाहिए।

2.9.4 सारांश :

इस पाठ में आपको संस्मरण नामक साहित्यिक विधा से परिचित कराया गया है। हिन्दी में संस्मरण लेखन की समृद्ध परम्परा है और वर्तमान समय में अनेकों संस्मरण लिखे जा चुके हैं।

2.9.5 शब्दावली :

भावावेश – भावना के आवेश में
अन्तराल – समय का अन्तर
अनुरंजित – लिप्त होना
रमणीय – सुन्दर
अगाध – अत्यन्त

2.9.6 बोध प्रश्न :

1. हिन्दी में संस्मरण लेखन कब शुरू हुआ ?
2. संस्मरण के प्रमुख तत्त्व क्या हैं ?
3. संस्मरण लेखन का उद्देश्य क्या है ?
4. हिन्दी के प्रमुख संस्मरणों के नाम बताएं।

पाठ संख्या : 2.9 (C) **लेखिका : डॉ. सुरिन्द्रपाल कौर**

रेखा चित्र की परिभाषा और तत्व

रेखाचित्र : परिभाषा व स्वरूप :

रेखाचित्र भी संस्मरण की भांति आधुनिक युग में विकसित एक गद्य विधा है। सामान्यतः संस्मरण और रेखाचित्र में कुछ लोग अंतर नहीं कर पाते हैं, जबकि ये दोनों पूर्णतः अलग–अलग और स्वतन्त्र विधाएं हैं। संस्मरण, संस्मरणकार का अनुभूत यथार्थ होता है, जिसका सम्बन्ध अतीत से हैं। उसमें कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं होता, वह विवेच्य व्यक्ति, घटना या प्रसंग की यथातथ्यता को बनाए रखकर उसमें संचरित भीतरी संवेदना को पकड़ता है।

रेखाचित्र, संस्मरण के गुणों का अनुपालन नहीं करता। वह तो चित्रकला से उत्प्रेरित एक साहित्यिक विधा है, जिस प्रकार रेखा चित्रकार रेखाओं में अपने विवेच्य विषय को पूर्ण और सूक्ष्म आकार न देकर केवल आकार का आभास प्रदान करना है, ठीक उसी प्रकार साहित्यिक रेखा चित्रकार शब्दों में अपने विवेच्य विषय के स्वरूप का आकारात्मक आभास देता है। जिस प्रकार रेखाओं में उभरे चित्र को देखने पर उस चित्र के व्यक्तित्व की मानसी झलक में से उसके भीतरी व्यक्तित्व की सही पहचान न करके केवल कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है। उसी प्रकार साहित्यिक रेखाचित्र में चित्रित वस्तु के भीतर भी वैसे ही थोड़ा–सा झांका जा सकता है। इसीलिए अंग्रेज़ी में रेखा चित्र को 'स्केच' कहा गया है अर्थात् आड़ी–तिरछी, गहरी–फीकी, जैसी भी चित्रकार अपनी कल्पना के आधार पर रेखाएं खींचना चाहे, उन रेखाओं के माध्यम से उभारा गया चित्र। स्पष्ट है कि रेखाचित्र में रेखाचित्र के पास कल्पना की भी छूट होती है और मनमाने ढंग से प्रस्तुति की भी। दूसरे शब्दों में वह काल्पनिक आधार पर भी चित्र प्रस्तुत कर सकता है अर्थात् उसके लिए संस्मरणकार की भांति आवश्यक नहीं कि वह अपने विषय के सम्पर्क में रहा ही हो। इस प्रकार रेखाचित्र पूरी तरह यथार्थ–आश्रित नहीं रहता और उसमें कलाकार का व्यक्तित्व भी स्थान पा जाता है।

हिन्दी में महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' तथा 'मेरा परिवार' संग्रहों में संगृहीन रेखाचित्रों को संस्मरण मान लेने की एक भूल न केवल सामान्य पाठक बल्कि कुछ विद्वान् भी करते आए हैं। लेखिका के केवल अपने पात्रों से सम्पर्क बता दिए जाने भर से वे संस्मरण की श्रेणी में नहीं आ जाते। फिर, रेखाचित्र भी तो सम्पर्क में आये व्यक्ति, घटना, प्रसंग इत्यादि पर लिखा जा सकता है। महादेवी अपने इन रेखाचित्रों में आद्यन्त पूरी तरह कल्पना का सहारा लेती दिखाई पड़ती हैं। वे उनमें अपने निजी व्यक्तित्व की छाप को विवेच्य पात्र से कहीं–कहीं अधिक गहराते हुए देखी जा सकती है। वे सभी रेखाचित्र विवेच्य पात्रों के आकार–प्रकार को अधिक उभारते दिखाई पड़ते हैं। कथानक–सूत्र सर्वत्र बिखरे हुए हैं जो स्थल–स्थल काल्पनिक उड़ान और विषयान्तर के बाद जोड़े गये हैं। सभी विवेच्य पात्रों का मूर्त पक्ष अधिक उजागर हुआ है। उनमें जहां–कहीं जीवन के ब्योरे प्रस्तुत किए गये हैं,

वहां—वहां विश्लेषण—पद्धति का सहारा लिया गया है। इसलिए वे सब संस्मरण न होकर रेखाचित्र ही हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर अब हम रेखाचित्र की परिभाषा इस प्रकार निर्धारित कर सकते हैं कि रेखाचित्र व्यक्तियों, घटनाओं, दृश्यों इत्यादि का ऐसा शब्द—चित्र होता है जो सम्बद्ध व्यक्ति, घटना या दृश्य को पाठक के सम्मुख अभासात्मक रूप में साकार कर देता है। ये व्यक्ति, घटनाएं और दृश्य काल्पनिक भी हो सकते हैं तथा रेखाचित्रकार के सम्पर्क में आए हुए भी। परन्तु इनकी प्रस्तुति में रेखाचित्रकार का ध्यान भीतर की अपेक्षा बाहर की ओर अधिक रहता है।

रेखाचित्र के तत्व :

रेखाचित्र में व्यक्ति, घटना या दृश्य में से किसी एक को लेकर केवल उसी एक की ही चित्र उभारा जाता है। इसमें लेखक की वैसी वैयक्तिक रागात्मकता नहीं होती, जैसी कि संस्मरण में। इसके तत्व निम्नलिखित हैं :

1) चित्रात्मकता :

रेखाचित्र, चूंकि शब्दों में उभारा गया चित्र—प्रधान लेखन होता है। इसलिए चित्रात्मकता इसका मूलभूत तत्त्व है। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि रेखाचित्रकार शब्दों में विवेच्य विषय का चित्रात्मक आभास प्रदान करता है, न कि बिम्ब—योजना के द्वारा उसको साकार करने का प्रयास करता है। बिम्बात्मकता, संस्मरणकार की शैली का गुण है, रेखाचित्रकार का नहीं। इसका यह आश्य नहीं कि रेखाचित्रकार अपने रेखाचित्र में बिम्बों का आश्रय नहीं ले सकता। उसका मन्तत्व तो विवेच्य विषय की शाब्दिक आकृति प्रस्तुत करना होता है, जो किसी एक बिम्ब या बिम्बमाला द्वारा नहीं उकेरी जा सकती। चित्र और बिम्ब में अंतर है। चित्र स्थूल होता है और बिम्ब, चित्रगत सूक्ष्मता की पकड़ वस्तु की भीतरी अर्थवत्ता या सप्राणता को उद्घाटित करता है, जबकि चित्र उसके ब्राह्य आकार—प्रकार का आभास होता है। रेखाचित्रकार का लक्ष्य इसी आकार—प्रकार का उद्घाटन होता है।

चित्र और रेखाचित्र में भी अन्तर होता है। चित्र, वस्तु की आकृति को पूर्णतया और स्पष्ट रूप में उभारता है, जबकि रेखाचित्र उस वस्तु के होने का आभास देता है न कि उसे यथावत् रूप में साकार करता है। यहां यह कहा जा सकता है कि वस्तु के आकार का आभास तो व्यंग्य—चित्र (कार्टून) में भी प्राप्त हो जाता है, परन्तु व्यंग्य प्रधान होने के कारण उस आभास में वस्तु की बेडौलता को उभारा जाता है, जबकि रेखाओं में खींचे गये चित्र में वस्तु को बेडौल न बनाकर उसे प्रस्तुत तो उसके यथार्थ रूप में ही किया जाता है परन्तु यथार्थ की सूक्ष्मताएं उसमें उभर नहीं पाती। विधा—रूप में रेखाचित्र चूंकि साहित्यिक रचना है, इसलिए इसमें रेखाओं का काम शब्दों से लिया जाता है।

2) कल्पनाश्रित यथार्थ :

रेखाचित्र भी तो यथार्थ के आधार पर ही लिखे जाते हैं, परन्तु यह यथार्थ संस्मरण के यथार्थ की भांति तथ्यात्मक अर्थात् इतिहासपरक नहीं होता। यह यथार्थ जीवन का यथार्थ होता है, ठीक वैसे ही जैसे कहानी का यथार्थ। इसलिए रेखाचित्रकार के पास अपने विवेच्य विषय को फैलाव देने के लिए उससे जुड़े यथार्थ को कल्पना के द्वारा फैलाव देने की संभावना रहती है। रेखाचित्र चूंकि प्रायः जीवन के बाहरी स्वरूप पर दृष्टि रखता है, इसलिए यह कल्पना भी प्रायः स्थूल ही होती है। संस्मरणकार तो अपने विषय के संवेदना—पक्ष से जुड़ने के कारण भीतर से बाहर की ओर आता है और विषयगत गुणों के माध्यम से विषय

के प्रभावी पक्ष को उजागर करता है, वहीं पर रेखाचित्रकार अपने विषय में बाहर से भीतर की ओर जाता है। दूसरे शब्दों में वह स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाता तो है, परन्तु उसमें भी वह सूक्ष्म का आश्रय, स्थूल को ही अधिक विश्वसनीय बनाने की दृष्टि से प्राप्त करता है। इसलिए उसका संवेदनात्मक पक्ष यथार्थ का पुष्टिकारक होता है। केवल कल्पनाजन्य संदर्भों से ही वह विषय के भीतर झांककर कुछ जीवन–सापेक्ष खोज निकालता है। इस प्रकार रेखाचित्र में कल्पना उपकारक तत्व है, जो यथार्थ से कहीं टक्कर नहीं लेती, बल्कि यथार्थ को गहराने का कार्य करती है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रेखाचित्र में कल्पना के स्तर पर भावात्मक उड़ान नहीं भरी जा सकती, चूंकि उससे तो रेखाचित्र की स्थूल रेखाओं की अन्विति ही भंग होने का भय रहता है।

3) वर्णनात्मकता :

रेखाचित्र वर्णन विधान विधा है। स्थूल रूपाकार वर्ण्य ही होता है। विवरण तो भीतरी पकड़ के स्तर पर अपेक्षित रहता है। जिस प्रकार चित्रकार निश्चित आयामों और परिधि में ही अपनी पेन्सिल या तूलिका को घुमाता है तो यह घूमाना उसकी वर्ण्य सीमाओं का सूचक होता है। ठीक इसी प्रकार रेखाचित्रकार भी अपने वर्ण्य–विष्ज्ञय की आकृति को, शब्दों की तूलिका को निश्चित आयामों में घुमाकर ही निष्पन्न करता है। इसे ही हम यों कह सकते हैं कि वह रेखाचित्र में वर्णनात्मकता का आश्रय लेता है।

रेखाचित्रकार जब बाहर से भीतर की ओर विषय में प्रवेश करता है तो भी वह अधि ाक गहराई में न जाकर अपने शब्द–चित्र की स्थूलता को पुष्ट करने के लिए वर्णनात्मक ह ी
अधिक रहता है। यदि कहीं वह दया, करूणा, ममता, प्रेम, अहिंसा जैसे रागात्मक पक्षों का उद्घाटन करता है तो भी वह उद्घाटन विषयगत न होकर स्थितिजन्य अधिक होता है। उदाहरण के लिए महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों के सभी पात्र दया, करूणा, ममता के पात्र हैं जिन्हें परिस्थितियों ने ऐसा बना दिया है, न कि वे स्वयं इन गुणों से विभूषित हैं। संस्मरण और रेखाचित्र में यही अन्तर स्पष्ट हो जाता है कि संस्मरण के पात्र इन गुणों से संवलित होते हैं, जिन्हें संस्मरणकार संवेदनात्मक स्तर पर उभारता है। वह इन गुणों को अपने पात्रों के भीतर से उगता हुआ दिखाता है। रेखाचित्र में यह संभव नहीं, क्योंकि वह तो स्थूल स्थितियों का चितेरा है और पात्रगत गुणों की खोज की अपेक्षा परिस्थितियों में उनकी स्थिति को वर्णित करता है जिससे उनके स्थूल स्वरूप में ही व्यंजना आती है।

4) कलात्मकता :

रेखाचित्र में साहित्यिकता का होना उतना ही आवश्यक है जितना कि किसी भी साहित्यिक विधा में। चूंकि प्रत्येक साहित्यिक विधा में साहित्यिकता का गुण उसके प्रारूप, शैली और योज्य उपादाकनों पर निर्भर करता है, ठीक उसी प्रकार रेखाचित्र की साहित्यिकता भी इसकी तात्विक अन्विति और शैली–विशेष पर निर्भर करती है। हम जानते हैं कि चित्रकार यदि मनमाने ढंग से अपनी चित्रगत रेखाओं को बड़ा–छोटा करेगा तो उसका चित्र वस्तुगत आकृति को स्पष्टता प्रदान नहीं कर सकेगा। ठीक उसी प्रकार रेखाचित्रकार को भी अपने विषय की आकृति के उद्घाटन हेतु शब्द–चयन में पर्याप्त कौशल का निर्माण करना होता है।

सारांश :

जीवनी का अपना एक विशेष साहित्यिक महत्व होता है। गद्य की अन्य विध

ाएं—नाटक, एकांकी, उपन्यास और कहानी आदि का उद्देश्य किसी समय मात्र मनोरंजन हो सकता है, परन्तु जीवनी पाठकों के मन में स्फूर्ति और नवचेतना के संचार का एक बहुत बड़ा साधन है। जीवनी के प्रमुख रूप से सात तत्त्व स्वीकार किए गए हैं। आत्मकथा गद्य विधा में लेखक अपने बारे में विस्तारपूर्वक लिखता है। वह अपने जीवन के श्वेत श्याम सभी पक्षों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। आत्मकथाकार के लिए सत्य के प्रति निष्ठावान तटस्थ, कलात्मक और उद्देश्य की सार्थकता प्रति विशेष रूप से परिचित होना चाहिए। इसके भी विभिन्न भेद स्वीकार किए गए हैं। संस्मरण व्यक्ति के अनुभूति पर लिखा जाता है। इसमें विवरण की प्रधानता होती है। अतीत, यथार्थ अनुभव और शैली इसके प्रमुख तत्त्व हैं। रेखाचित्र, संस्मरण के गुणों का अनुपालन नहीं करता। यह व्यक्तियों, घटनाओं, दृश्यों इत्यादि का ऐसा शब्दचित्र होता है, जो सम्बद्ध व्यक्ति, घटना या दृश्य को पाठक के सामने आभासात्मक रूप में साकार कर देता है। चित्रात्मकता, कल्पनाश्रित यथार्थ, वर्णनात्मकता और कलात्मकता इसके प्रमुख तत्त्व हैं। अंत में कहा जा सकता है कि ये सारी विधाएं अति आधुनिक होने के साथ—साथ महत्त्वपूर्ण भी हैं।

शब्दार्थ :

समाविष्ट	—	समाहित
सर्वप्रथम	—	सबसे पहले
तदुपरान्त	—	उसके बाद
ध्यातव्य	—	ध्यान देने योग्य
प्रतिकूल	—	विपरीत
निष्पक्ष	—	बिना भेद भाव के
समीचीन	—	सही, उपयुक्त
स्मृति	—	यादें
लक्ष्य	—	उद्देश्य

अभ्यास प्रश्नावली :

1) जीवनी की परिभाषा लिखें।
2) जीवनी के तत्त्वों पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
3) आत्मकथा की परिभाषा व स्वरूप विषय पर प्रकाश डालें।
4) आत्मकथा के प्रमुख आवश्यक तत्त्व कौन—से हैं? लिखें।
5) संस्मरण के तत्त्वों का विवेचन करें।
6) रेखाचित्र किसे कहते हैं?
7) रेखाचित्र के प्रमुख तत्त्वों का उल्लेख कचरें।

(ये पाठ D.D.E. की वित्तीय सहायता से लिखे गए हैं।)